राष्ट्रोत्कर्ष-अभियान

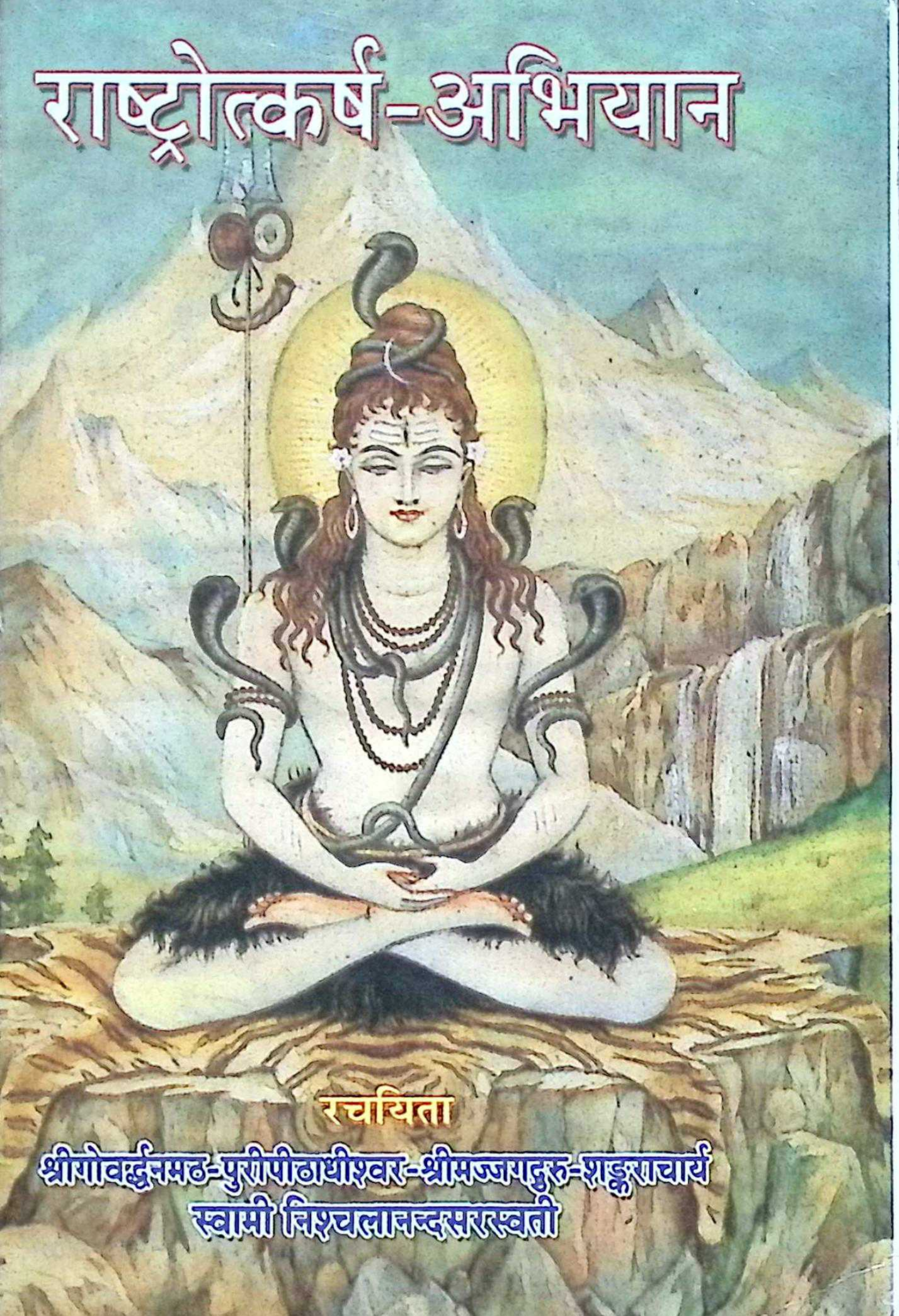

रचयिता

श्रीगोवर्द्धनमठ-पुरीपीठाधीश्वर-श्रीमज्जगद्गुरु-शङ्कराचार्य
स्वामी निश्चलानन्दसरस्वती

राष्ट्रोत्कर्ष-अभियान

रचयिता

श्रीगोवर्द्धनमठ-पुरीपीठाधीश्वर-श्रीमज्जगद्गुरु-शङ्कराचार्य
स्वामी निश्चलानन्दसरस्वती

राष्ट्रोत्कर्ष - अभियान

प्रकाशनप्रशस्ति

"स्वस्तिप्रकाशनसंस्थान" - श्रीगोवर्द्धनमठ - पुरीका

१२ पुष्प

राष्ट्रोत्कर्ष -अभियान

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण वि. स. २०६८, सन् २०११

१००० प्रतियाँ

सहयोगराशि

५०.०० (पचास रुपये)

स्वस्तिप्रकाशनसंस्थान

श्रीमज्जगद्गुरु - शङ्कराचार्य, गोवर्द्धनमठ, पुरी -७५२००१.

(ओडिशा), भारत

श्रीहरिः
श्रीगणेशाय नमः

राष्ट्रोत्कर्ष - अभियान

प्राक्कथन

श्रीमज्जगद्गुरु - शङ्कराचार्य - महाभागद्वारा विरचित **'राष्ट्रोत्कर्ष - अभियान '** स्वस्थ क्रान्तिका उपक्रम है। पूज्यपादके द्वारा संस्थापित पीठपरिषद् से सञ्चालित **'हिन्दुराष्ट्रसङ्घ'** के अन्तर्गत **'राष्ट्रोत्कर्ष - अभियान '** के स्वरूपका सूत्रात्मक चित्रण इसमें सन्निहित है। धर्मनिष्ठा तथा भगवद्भक्तिरूपा ब्रह्मनिष्ठासे समन्वित जीवनकी सार्थकता सुनिश्चित है। अत एव धर्म और ब्रह्मरूप वेदार्थका संक्षिप्त तथा सारगर्भित प्रतिपादन ग्रन्थके प्रारम्भमें किया गया है।

'सुसंस्कृत, सुशिक्षित, सुरक्षित, सुसम्पन्न, सेवापरायण और स्वस्थ व्यक्ति तथा समाजसंरचनाकी शासकीयविधा राजनीति है।' की उक्तिसे स्वामिपादके द्वारा विश्वस्तरपर परिभाषित राजनीतिके क्रियान्वयनका क्रमिक सोपान इस निबन्धमालामें सन्निहित है। इसके मनोयोगपूर्वक अनुशीलन तथा क्रियान्वयनसे प्रत्येक राष्ट्रका उत्कर्ष सुनिश्चित है।

निवेदक
स्वामी श्रीनिर्विकल्पानन्दसरस्वती
२६. १२.२०११
परभणी (महाराष्ट्र)

श्रीहरिः

श्रीगणेशाय नमः

राष्ट्रोत्कर्ष - अभियान

विषयानुक्रमणी

क्रम	विषय	पृष्ठ
❋	प्रकाशनप्रशस्ति	०२
❋	प्राक्कथन	०३
❋	विषयानुक्रमणी	०४
१.	मङ्गलाचरण	०५
२.	ब्रह्मात्मपरिशीलन	०६
३.	धर्मानुशीलन	१६
४.	पुरुषार्थ	२२
५.	परिस्पन्द	३५
६.	परिवेदना	४६
७.	संरचना	६०
८.	परियोजना	७७
९.	हिन्दुधर्मोपदेश	८७
१०.	जयघोष	९०
११.	श्रीहरिगुरुवन्दना	९२
१२.	स्वस्तिप्रकाशन	९४-९९

卐

श्रीहरि:

श्रीगणेशाय नम:

राष्ट्रोत्कर्ष - अभियान

१.मङ्गलाचरण

श्रियं सरस्वतीं गौरीं गणेशं स्कन्दमीश्वरम्।
ब्रह्माणं वह्निमिन्द्रादीन् वासुदेवं नमाम्यहम्।।
(अग्निपुराण १.१)

"लक्ष्मी, सरस्वती, गौरी, गणेश, कार्तिकेय, शिव, ब्रह्मा एवम् इन्द्रादि देवोंको तथा वासुदेवको मैं नमस्कार करता हूँ।।"

गणेशं प्रमथाधीशं निर्गुणं सगुणं विभुम्।
योगिनो यत्पदं यान्ति तं गौरीनन्दनं भजे।।
(गणेशपूर्वतापिन्युपनिषत्)

"जो प्रमथ - संज्ञक शिवगणोंके अधिपति तथा निर्गुण और सगुण हैं, योगिवृन्द जिस पदको प्राप्त करते हैं, उस गौरीनन्दन गणेशका मैं आत्मीय एवम् आत्मभावसे भजन करता हूँ।।"

श्रीहरिः

श्रीगणेशाय नमः

राष्ट्रोत्कर्ष - अभियान

२. ब्रह्मात्मपरिशीलन

सर्वेश्वरकी अद्भुत कृति सृष्टि है। सृष्टिसंरचनाके स्वरूप तथा प्रयोजनके विज्ञानसे जीवनकी सार्थकता सम्भव है। अकृतार्थ प्राणी अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष - नामक पुरुषार्थचतुष्टय सिद्ध कर स्वयंको कृतार्थ कर सकें, इस भावनासे भावित सर्वेश्वरने प्रलयोत्तर महासर्गके प्रारम्भमें पृथ्वी, पानी, प्रकाश, पवन, आकाशकी संरचनाके अनन्तर जीवोंको देह, इन्द्रिय, अन्त:करण और प्राणोंसे युक्त जीवन प्रदान किया। -

"बुद्धीन्द्रियमन:प्राणान् जनानामसृजत्प्रभुः।
मात्रार्थं च भवार्थं च आत्मनेऽकल्पनाय च।।"

(श्रीमद्भागवत १०.८७.२)

ध्यान रहे ; धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार पुरुषार्थ हैं। अर्थ और काम - आस्तिक अैर नास्तिक उभयसम्मत पुरुषार्थ हैं। परन्तु धर्मको ताकपर रखकर अर्थ और कामको पुरुषार्थ बना पाना सर्वथा असम्भव है। तद्वत् मोक्षको परम पुरुषार्थ मानकर तदर्थ धर्मानुष्ठानके बिना धर्मको दिशाहीन होनेसे बचा पाना भी सर्वथा असम्भव है। अत: अर्थ, काम, धर्म और मोक्षको परिभाषित करना परमावश्यक है।

स्वस्थ, शान्त, चेतनासम्पन्न तथा सुखमय जीवनकी समुपलब्धिकी भावनासे सञ्चित विषयोपभोगकी सामग्री **अर्थ** है। तदर्थ विषयोपभोग **काम** है। अर्थोपार्जन और विषयोपभोगकी और उनसे अनासक्तिकी सनातनविधा **धर्म** है। अनात्मवस्तुओंसे विविक्त सच्चिदानन्दस्वरूप आत्माका निरावरण स्फुरण **मोक्ष** है। अभिप्राय यह है कि विषयोपभोगकी न्यायोपार्जित सामग्री **अर्थ** है। विषयोपभोग और उससे संप्राप्त प्रमोद **काम** है। अर्थोपार्जनकी, विषयोपभोगकी और मोक्षकी श्रुतिसंज्ञक सनातनशास्त्रसम्मतविधा **धर्म** है। अनात्मवस्तुओंके अनुरूप आत्ममान्यताका परित्याग और आत्मानुरूप आत्मस्थिति **मोक्ष** है। मोक्षोपलब्धिसे जन्म - मृत्युकी अजस्र - परम्पराका समुच्छेद सम्भव है। धर्म ही सबको सुबुद्ध, स्वावलम्बी और सत्यसहिष्णु बनानेमें समर्थ है। धर्मके परिपालनसे अर्थ, काम और मोक्षरूप शेष तीन पुरुषार्थोंकी भी संसिद्धि सुनिश्चित है । लोक, परलोककी सार्थकता और परमार्थसिद्धिकी प्रशस्त

विधा धर्म है ।-

धर्मात्सञ्जायते ह्यर्थो धर्मात्कामोऽभिजायते ।
धर्म एवापवर्गाय तस्माद्धर्मं समाश्रयेत् ।।
(कूर्मपुराणपूर्व. २.४५)

"धर्मसे अर्थोपलब्धि सुनिश्चित है। धर्मसे काम भी सुलभ होता है। सत्य, स्नेह, सहानुभूति, सेवा, शम, दम, शील, दया, दान, ज्ञान-विज्ञानादिरूप धर्मसे ही अपवर्ग - संज्ञक मोक्ष भी सम्भव है। अतः धर्माचरण अपेक्षित है।।"

प्राणियोंकी इच्छाके मौलिक विषय सच्चिदानन्दकी समुपलब्धिसे ही जीवकी कृतार्थता सम्भव है। मृत्युके चपेटसे विनिर्मुक्त सत्संज्ञक मृत्युञ्जयपद, मूढताके चपेटसे विनिर्मुक्त चित्संज्ञक अखण्ड विज्ञान तथा दुःखके चपेटसे विनिर्मुक्त आनन्द प्राणियोंकी इच्छाका मौलिक विषय है। जिस प्रकार जलके अधिदैवको कदाचित् प्यास लग जाने पर उसे पानी पिलाकर प्यासजन्य वेदनासे विनिर्मुक्त नहीं किया जा सकता है; अपितु 'जिसके सेवनसे प्यासे प्राणी प्यासमुक्त होते हैं, वही तुम हो' इस उपदेशके अधिगमसे ही उसकी प्यासजन्य वेदनासे परित्राण सम्भव है; उसी प्रकार किसीकी आयु बढ़ाकर मृत्युके चपेटसे परित्राण असम्भव है; अपितु 'तुम्हारी चाहका विषय सत्संज्ञक अक्षय आयुरूप मृत्युञ्जयपद तुम स्वयं हो' इस उपदेशके अधिगमसे ही सम्भावित मृत्युजन्य वेदनासे परित्राण सम्भव है। तद्वत् बाह्य विषयोंका बोध बढ़ाकर अबोधसे त्राण

असम्भव है। 'तुम्हारी चाहका विषय चित्संज्ञक अखण्ड विज्ञान तुम स्वयं हो' इस उपदेशके अधिगमसे ही अबोधजन्य वेदनासे परित्राण सम्भव है । तद्वत् दैहिक, दैविक और भौतिक तापोंसे सन्तप्त मानव अभीष्ट विषयके परिरम्भणसे सुलभ प्रिय, मोद तथा प्रमोद संज्ञक विषयानन्दसे संतृप्त नहीं हो सकता। 'तुम्हारी चाहका विषय सुखसंज्ञक अखण्ड आनन्द तुम स्वयं हो' इस उपदेशके अधिगमसे ही त्रिविध तापोंसे परित्राण सम्भव है ।

अभिमतकी समुपलब्धिसे सुलभ आनन्द **'प्रिय'** है। अभीष्टके सेवनसे समुपलब्ध आनन्द **'मोद'** है। इच्छितके यथेष्ट संश्लेषसे सुलभ आनन्द **'प्रमोद'** है। प्रिय, मोद तथा प्रमोद - संज्ञक उत्तरोत्तर उत्कृष्ट आनन्दकी तिलाञ्जलि देकर सुषुप्तिकी भावना विषयजन्य आनन्दकी परप्रेमास्पदता निरस्त करती है। जहाँ विषयजन्य आनन्द है; वहाँ भोक्ता, भोग्य और भोगरूप त्रिपुटी है। जहाँ त्रिपुटी है; वहाँ द्वैत है। जहाँ द्वैत है; वहाँ श्रम है। जहाँ श्रम है; वहाँ निरतिशय आनन्द नहीं है। त्रिपुटी, द्वैत तथा श्रम - विहीन किन्तु द्वैतबीज सुषुप्तिसे भी व्युत्थानकी धारणा स्वप्रकाश अभोग्य आत्मस्वरूप आनन्दकी परप्रेमास्पदता सिद्ध करती है।

अन्तः आराम, अन्तर्ज्योति और अन्तःसुखसम्पन्न सत्पुरुषका जीवन निस्सन्देह धन्य है। विकासके नामपर बहिर्मुखता तथा परतन्त्रताकी चिर दासता अभिशाप है।-

२. ब्रह्मात्मपरिशीलन

"योन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव च।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति।।"
(श्रीमद्भगवद्गीता ५.२४)

'वस्तुशक्ति ज्ञानकी अपेक्षा नहीं रखती' विष तथा अमृतके अज्ञातसेवनकी और अग्निके अज्ञातसंस्पर्शकी भी फलप्रदताके अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है। कस्तूरीका मृग वस्तुवैभवके प्रभावसे निर्गन्ध तृणादिके आघ्राणसे भी आमोद प्राप्त किये बिना नहीं रहता। परन्तु नाभिमण्डलस्थ कस्तूरीके अज्ञानवैभवके प्रभावसे भटके बिना वह नहीं रहता। अत एव 'वस्तुशक्ति ज्ञानकी अपेक्षा नहीं रखती ; तद्वत् अज्ञानवैभव अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहता' यह अकाट्य तथ्य हृदयङ्गम करने योग्य है।

आत्मदेव सच्चिदानन्दस्वरूप है; अतएव वह कभी अस्तित्व - ज्ञान - आनन्दविहीन नहीं होता। वह अनित्य, अज्ञान और दुःखका भी साक्षी ही सिद्ध है। यह 'वस्तुशक्ति ज्ञानकी अपेक्षा नहीं रखती' का ज्वलन्त उदाहरण है; तथापि अनित्य , जड तथा दुःखप्रद अनात्मवस्तुओंमें अहन्ता - ममतारूप तादात्म्यापत्ति या अध्यासके कारण भवचक्रमें भ्रमण किये बिना नहीं रहता। यह अज्ञानशक्तिका अमोघ प्रभाव है।

नाश, जडता तथा दुःखसे असङ्ग , अतीत और इनका अधिष्ठानस्वरूप ब्रह्म सर्वहितस्वरूप है। वही सबका विश्रामस्थान और वरेण्य है। उसे आत्मीय समझकर उसके सेवनसे मृत्यु , मूढता

तथा दुःखसे त्राण उसी प्रकार सम्भव है; जिस प्रकार दाहक और प्रकाशक अग्निके सान्निध्यसे शीत तथा अन्धकारका निवारण सुनिश्चित है। उसकी आत्मरूपताके अधिगमसे अविद्या , काम तथा कर्मकृत मृत्यु , मूढता तथा दुःखका आत्यन्तिक उच्छेद उसी प्रकार सम्भव है; जिस प्रकार दाहक और प्रकाशक वह्निरूपतासे शीत तथा अन्धकारका आत्यन्तिक उच्छेद स्वतः संप्राप्त है। सुषुप्तिमें अनात्मवस्तुओंके अनुरूप आत्ममान्यताका विलय होनेके कारण मृत्यु, मूर्खता तथा दुःखसे अतीतस्थिति आत्माकी सच्चिदानन्दरूपताकी सहिष्णुतामें प्रबल हेतु है।

सच्चिदानन्दस्वरूप आत्माके अधिगमके अनुरूप जीवन तथा जगत् की संरचना **सनातनसंस्कृति** है।

मृत्यु , मूढता तथा दुःखका साक्षी जीव निर्द्वन्द्व सच्चिदानन्द है। वह अबाध्य होता हुआ अपरोक्ष होनेके कारण सत् है, अवेद्य होता हुआ अपरोक्ष होनेके कारण चित् है एवम् परम प्रेमास्पद होता हुआ अभोग्य होनेके कारण आनन्द है। वह नित्य होनेके कारण कालकृत अन्तसे रहित है, सर्वव्यापक होनेके कारण देशकृत अन्तसे रहित है और सर्वरूप सर्वाधिष्ठान होनेके कारण वस्तुकृत अन्तसे रहित है ; अतएव अनन्त है। वह सर्वाधिष्ठान होता हुआ अपरोक्ष होनेके कारण अद्वय है। उसके अधिगमसे सर्वविध अनर्थोंका अन्त सुनिश्चित है।

आत्माकी सच्चिदानन्दरूपताके अनुसन्धानके लिए सत्य-

शीलता, विवेकसमादरता, विषयलम्पटतासे सुदूरता ; तद्वत् सबके स्वस्थ, चेतनासम्पन्न तथा सुखमय जीवनकी सहिष्णुता नितान्त अपेक्षित है।

जगत् जीवनधन जगदीश्वरकी अभिव्यक्ति और उनका अभिव्यञ्जक संस्थान है; अत एव इसकी अद्भुत उपयोगिता है; तथापि यह स्वतन्त्ररूपसे वरण करने योग्य नहीं है। इसमें अहन्ता तथा ममताका सन्निवेश मृत्यु, मूढता तथा दुःखके अभिनिवेशमें हेतु है। सुषुप्तिमें मृत्युग्रस्त जड दुःखप्रद शरीरमें अहन्ता तथा ममता न होनेके कारण अर्थात् अहन्ता तथा ममताका आश्रय अन्तःकरणका अविद्याके द्वारसे आत्मामें विलय होनेके कारण मृत्यु, मूढता तथा दुःखसे अतिक्रान्त निर्द्वन्द्व दशा सुलभ होती है। तथापि मृत्यु, मूढता तथा दुःखसहित अहन्ता तथा ममताका बीज अज्ञान अवशिष्ट रहनेके कारण सुषुप्तिके अनन्तर जागरादिमें पुनः मृत्यु, मूढता तथा दुःखकी प्राप्ति तथा व्याप्ति परिलक्षित है। अत एव ब्रह्मात्मतत्त्वके एकत्व विज्ञानरूप अग्निके अमोघ प्रभावसे मृत्यु, मूढता तथा दुःखसहित अहन्ता तथा ममताके बीज अज्ञानका निःशेष दाह कर्त्तव्य है।

प्रत्येक वस्तुका आकर्षणकेन्द्र उसका वास्तवरूप ही होता है। पार्थिव पुष्प, फलादिका आकर्षणकेन्द्र पृथिवी है। नद - निर्झर- जलप्रपातादिका आकर्षणकेन्द्र जलधि है। दीपज्वालाका आकर्षणकेन्द्र सूर्य है। तद्वत् जीवोंका आकर्षणकेन्द्र उसका वास्तवरूप सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म है।

२. ब्रह्मात्मपरिशीलन

दृश्य जगत् सावयव है। इसका निर्माता निमित्तकारण सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक सर्वेश्वर ही हो सकता है। अभिप्राय यह है कि वस्तुकृत परिच्छेदशून्य ब्रह्म ही जगत् बनाने और बननेवाला अर्थात् जगत् का अभिन्न निमित्तोपादानकारण है। अतएव सुवर्णाभूषणके द्वारसे सुवर्णसदृश जगत् के द्वारसे वही सबका आकर्षणकेन्द्र है। इस रहस्यको आत्मसात् कर साक्षात् सर्वेश्वरको वरणीय तथा भजनीय मानना आवश्यक है।

वैदिक व्यासपीठ और शासनतन्त्रके सैद्धान्तिक सामञ्जस्यसे जीवोंकी कृतार्थताके अनुरूप व्यक्ति तथा समाजकी संरचनाका प्रकल्प अपेक्षित है।

जीवनकी सार्थकताके लिए प्रवृत्तिका पर्यवसान निवृत्तिमें और निवृत्तिका पर्यवसान निर्वृति (मुक्ति) में हो, यह आवश्यक है। कालकवलित लौकिक पारलौकिक उत्कर्षसे विरक्त ही मुक्तिपदमें अधिकृत है। –

"स्मृत्वा कालपरीमाणं प्रवृत्तिं ये समाश्रिताः।
दोषः कालपरीमाणे महानेष क्रियावताम्।।"
(महाभारत - शान्तिपर्व ३४०.१३)

"जो नियत कालतक प्राप्त होनेवाले स्वर्गादि फलोंको लक्ष्य करके प्रवृत्तिमार्गका आश्रय लेते हैं, उन कर्मपरायण पुरुषोंके लिये यही सबसे बड़ा दोष है कि वे कालकी सीमामें आबद्ध रहकर ही कर्मके फलका उपभोग करते हैं।।"

२. ब्रह्मात्मपरिशीलन

"निर्वाणं सर्वधर्माणां निवृत्तिः परमा स्मृता।
तस्मान्निवृत्तिमापन्नश्चरेत् सर्वाङ्गनिर्वृतः।।"
(महाभारत - शान्तिपर्व ३३९.६७)

"समस्त कर्मोंसे उपरत हो जाना ही परम निवृत्ति है अतः जो निवृत्तिको प्राप्त हो गया है, वह सम्पूर्ण निर्वृति (परमानन्दस्वरूपा मुक्तिरूपा उपरामता) लाभकर विचरण करे।।"

अभिप्राय यह है कि गतिका पर्यवसान स्थितिके तुल्य प्रवृत्तिका पर्यवसान निवृत्ति है और निवृत्तिकी सार्थकता निर्वृति (कैवल्यमुक्ति)में सन्निहित है। जिस गतिके गर्भसे गति ही निकलती जाय, उसकी दुर्गति मानी जाती है। तद्वत् जिस प्रवृत्तिके गर्भसे प्रवृत्ति ही निकलती जाय, उसकी दुर्गति मानी जाती है। अतः निवृत्तिपर्यवसायिनी प्रवृत्तिकी सराहना की जाती है। "**निवृत्तिस्तु महाफला**" (मनुस्मृति ५.५६)। निवृत्ति भी वही सार्थक है, जिसका पर्यवसान अपुनरावृत्तिरूप अपुनर्भवमें हो।

जगत् सदोष और विषम है। जगदाश्रय ब्रह्म निर्दोष और सम है। सदोष और विषम जगत् से जिन्होंने अपने मनको कर्षितकर निर्दोष और सम ब्रह्ममें सन्निहित कर दिया, उन्होंने सर्गसंज्ञक पुनर्भवपर जीवनकालमें ही विजयश्री प्राप्त कर ली। -

"इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः।।"
(श्रीमद्भगवद्गीता ५.१९)

२. ब्रह्मात्मपरिशीलन

जगत् को ही रम्य समझकर इसमें रमे रहनेवाले कृतकर्त्तव्य, ज्ञातव्यज्ञातव्य तथा प्राप्तप्राप्तव्य नहीं हो सकते। अविक्रिय विज्ञानघन सर्वाधिष्ठान जगदाश्रय ब्रह्मात्मतत्त्वके अधिगमसे ही कर्त्तव्य, ज्ञातव्य तथा प्राप्तव्यका अन्त सम्भव है। यह तथ्य **'तस्य कार्यं न विद्यते'** (श्रीमद्भगवद्गीता ३.१७), **'यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते'** (श्रीमद्भगवद्गीता ७.२), **'न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः'** (श्रीमद्भगवद्गीता ३.१८) के अनुशीलनसे सिद्ध है।

श्रीहरिः

श्रीगणेशाय नमः

३.धर्मानुशीलन

"धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मेण विधृताः प्रजाः।
यः स्याद् धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः।।"
(महाभारतशान्तिपर्व १०९. ११)

"धर्म धारण करता है, अर्थात् अस्तित्व और आदर्शक रक्षाकर अधोगतिसे बचाता है, इसलिए उसे धर्म कहा गया है। धर्म ही सारी प्रजाको धारण कर रक्खा है। अतः जिससे धारण औ पोषण सिद्ध होता हो, वही धर्म है, ऐसा सत्पुरुषोंका निश्चय है।।"

"धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।
यत् स्यात् धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः।।"
(महाभारतकर्णपर्व ६९.५८)

"धर्म ही प्रजाको धारण करता है और धारण करनेके कारण ही उसे धर्म कहते हैं। अतएव जो धारण - प्राणरक्षाके युक्त

हो, जिसमें किसी जीवका उत्पीडन -शोषण - अहित न हो, वह धर्म है, ऐसा शास्त्रोंका सिद्धान्त है।।"

"धर्मेति धारणे धातुर्माहात्म्ये चैव पठ्यते।
धारणाच्च महत्त्वेन धर्म एष निरुच्यते।।"
(मत्स्यपुराण १३४.१७)

"धृ - धातु धारण - पोषण और महत्त्वके अर्थमें प्रयुक्त होती है। इसी धातुसे 'धर्म 'शब्द निष्पन्न हुआ है। महत्त्वशील और धारक होनेसे यह धर्म - 'धर्म' कहा जाता है।।"

"धर्मेति धारणे धातुर्महत्त्वे चैव उच्यते।
अधारणेऽमहत्त्वे वाधर्मः स तु निरुच्यते।।
तत्रेष्टप्रापको धर्म आचार्यैरुपदिश्यते।
अधर्मश्चानिष्टफलं आचार्यैर्नोपदिश्यते।।
वृद्धाश्चालोलुपाश्चैव आत्मवन्तो ह्यदाम्भिकाः।
सम्यग्विनीता मृदवस्तानाचार्यान् प्रचक्षते।।"
(मत्स्यपुराण १४५.२७ -२९)

"'धृ' - धातु धारण करने तथा महत्त्वके अर्थमें प्रयुक्त होती है। अधारण तथा अमहत्त्वमें प्रयुक्त अधर्म शब्दका अर्थ इसके विपरीत है।।"

"आचार्यवृन्द इष्टकी प्राप्ति करानेवाले धर्मका ही उपदेश करते हैं। अनिष्ट फलप्रद अधर्मका उपदेश आचार्यगण नहीं करते।।"

"जो वृद्ध, निर्लोभ, संयमी तथा आत्मज्ञ, दम्भहीन, प
विनीत, मृदु - स्वभाव होते हैं ; उन्हें 'आचार्य' कहा जाता है।।

"**धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।**
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।"
(नारदपरिव्राजकोपनिषत् ३.२४, मनुस्मृतिः ६.९२)

"धृति (सन्तोष), क्षमा, दम (निर्विकार मनः स्थिति
मनः संयम, द्वन्द्वसहिष्णुता), अस्तेय (अन्यायपूर्वक धनार्जनमें प्री
तथा प्रवृत्तिकी निवृत्ति), शौच (शुद्धि), इन्द्रियनिग्रह, धी (शास्त्रज्ञान)
विद्या (आत्मज्ञान), सत्य और अक्रोध - ये दस धर्मके लक्ष
हैं।।"

"**अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।**
दानं दमो दया क्षान्तिः सर्वेषां धर्मसाधनम्।।"
(याज्ञवल्क्यस्मृति, आचाराध्याय १२२)

"अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, दान, द
(मनोनिग्रह), दया, क्षमा - ये सर्व वर्णोंके धर्म हैं।।"

अहिंसा सत्यमक्रोध आनृशंस्यं दमस्तथा।
आर्जवं चैव राजेन्द्र निश्चितं धर्मलक्षणम्।।
(महाभारत - अनुशासनपर्व २२.१९)

"राजेन्द्र! अहिंसा, सत्य, अक्रोध, कोमलता, इन्द्रियसंयम
और सरलता - ये धर्मके निश्चित लक्षण हैं।।"

सनातनधर्मकी निम्नलिखित **आचार - संहिताके**

अनुपालनसे सर्वहित सुनिश्चित है। -

दमः क्षमा धृतिस्तेजः सन्तोषः सत्यवादिता।
ह्रीरहिंसाऽव्यसनिता दाक्ष्यं चेति सुखावहाः।।
(महाभारत - शान्तिपर्व २९०.२०)

"इन्द्रियसंयम, क्षमा, धैर्य, तेज, सन्तोष, सत्यवादिता, लज्जा, अहिंसा, दुर्व्यसनका त्याग तथा दक्षता - ये सब सुखप्रद हैं ।।"

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा ।
अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः ।।
(महाभारत - शान्तिपर्व १६२.२१)

"मन, वाणी और कर्मद्वारा सर्वप्राणियोंके साथ कभी द्रोह न करना तथा दया और दान यह श्रेष्ठ पुरुषों का सनातन धर्म है ।"

यदन्यैर्विहितं नेच्छेदात्मनः कर्म पूरुषः।
न तत् परेषु कुर्वीत जानन्नप्रियमात्मनः ।।
(महाभारत, शान्तिपर्व २५९.२०)

"मनुष्य दूसरों द्वारा किये हुए जिस व्यवहारको अपने लिये वाञ्छनीय नहीं मानता, दूसरोंके प्रति भी वह वैसा न करे । उसे यह जानना चाहिये कि जो हिंसा, असत्य, चौर्य, व्यभिचार आदि वर्ताव अपने लिये अप्रिय है, वह दूसरोंके लिये भी प्रिय नहीं हो सकता ।।"

३. धर्मानुशीलन

परेषां यदसूयेत न तत् कुर्यात् स्वयं नरः ।
यो ह्यसूयुस्तथायुक्तः सोऽवहासं नियच्छति ।।
(महाभारत, शान्तिपर्व २९०.२४)

"मनुष्य दूसरेके जिस कर्मकी निन्दा करे, उसको स्व भी न करे । जो दूसरेकी निन्दा तो करता है, किन्तु स्वयं उस निन्द्य कर्ममें संलग्न रहता है, वह उपहासका पात्र होता है।।"

यदन्येषां हितं न स्यादात्मनः कर्म पौरुषम् ।
अपत्रपेत वा येन न तत् कुर्यात् कथञ्चन ।।
(महाभारत शान्तिपर्व १२४.६७)

"अपना जो पौरुष और कर्म अन्योंके लिये हितकर नह , अथवा जिसके करनेसे लज्जाका अनुभव हो, उसे कभी नह करना चाहिये ।।"

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैतत्प्रधार्यताम् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।।
(पद्मपुराण-सृष्टि. १९.३५५, विष्णुधर्मोत्तर. ३.२५३.४४)

"धर्मका सार सुनें और सुनकर इसे धारण करें । दूसरोंके द्वारा किये हुए जिस आचरणको अपने लिये नहीं चाहते, उसे दूसरोंके प्रति भी नहीं करना चाहिये ।।"

मनसोऽप्रतिकूलानि प्रेत्य चेह च वाञ्छसि।
भूतानां प्रतिकूलेभ्यो निवर्तस्व यतेन्द्रियः।।
(महाभारत - शान्तिपर्व ३०९.५)

३. धर्मानुशीलन

"यदि तुम लोक और परलोकमें अपने मनके अनुकूल पदार्थोंको प्राप्त करना चाहते हो तो अपनी इन्द्रियोंको संयत रखकर समस्त प्राणियोंके प्रतिकूल आचरणोंसे सुदूर रहो।।"

अग्निरात्मा च माता च पिता जनयिता तथा।
गुरुश्च नरशार्दूल परिचर्या यथातथम्।।
(महाभारत - शान्तिपर्व २९२.२२)

"पुरुषसिंह! अग्नि, आत्मा, माता, जन्म देनेवाले पिता तथा गुरु - इन सबकी यथायोग्य सेवा करनी चाहिये।।"

धर्म ही सबको सुबुद्ध, स्वावलम्बी और सत्यसहिष्णु बनानेमें समर्थ है । धर्मके परिपालनसे अर्थ, काम और मोक्षरूप शेष तीन पुरुषार्थोंकी भी संसिद्धि सुनिश्चित है । व्यवहारकी सार्थकता और परमार्थसिद्धिकी प्रशस्त विधा **धर्म** है। समस्त भेदभूमियोंके सदुपयोगका और निर्भेद आत्मातक गतिका विधायक **धर्म** है।

४.पुरुषार्थ

प्रत्यक्षादि इतर प्रमाणोंसे अनधिगत और अबाधित ब्र
जगत् का अभिन्ननिमित्तोपादानकारण सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्
है । वह सर्व, सर्वगत, सर्वान्तरात्मा, सर्वातीत तथा सगुण–निर्गुण
साकार–निराकार उभयरूप है । सर्वनियामक, परम स्वतन्
सच्चिदानन्दस्वरूप सनातन सर्वेश्वर सर्व जीवोंकी चाहका वास्त
विषय है । अतः वह सर्व जीवोंके आकर्षणका स्वाभाविक के
है । उसके साक्षात्कारकी भावनासे और विश्वको विप्लवपू
विभीषिकाओंसे बचानेकी इच्छासे अर्थ और कामको पुरुषार्थविही
होनेसे बचना अत्यावश्यक है ।

धर्म्मादर्थश्च कामश्च मोक्षश्च त्रितयं लभेत्।
तस्माद्धर्मो समीहेत विद्वान् स बहुधा स्मृतः।।
(शिवपुराण-धर्मसंहिता २९.१)

"धर्मसे अर्थ और काम तथा मोक्ष तीनोंकी समुपलब्
सम्भव है । अतएव विद्वान् धर्ममें आस्थान्वित रहता हुआ उसके
समाचरणमें स्वयंको संलग्न रखे । वह धर्म यज्ञ, दान, तप
स्वाध्याय, आत्मानुशीलनादि भेदसे विविध प्रकारका मान्य है।।"

४. पुरुषार्थ

सुखे वा यदि वा दुःखे वर्तमानो विचक्षणः।
यश्चिनोति शुभान्येव स तन्त्राणीह पश्यति।।
धर्मादपेतं यत्कर्म यद्यपि स्यान्महाफलम्।
न तत् सेवेत मेधावी न तद्धितमिहोच्यते।।

(महाभारत - शान्तिपर्व २९३.७,८)

"जो विद्वान् सुख अथवा दुःखकी स्थितिमें सदा शुभ कर्मका ही अनुष्ठान करता है, वही यहाँ शास्त्रोंको देखता अर्थात् शास्त्रोंके तात्पर्यको समझता है।।"

"धर्मके विपरीत कर्म यदि लौकिक - दृष्टिसे बहुत लाभप्रद हो तो भी बुद्धिमान् पुरुषको उसका सेवन नहीं करना चाहिये; क्योंकि उसे इस जगत् में हितकर नहीं बताया जाता है।।"

"यथा ज्ञाने परिचयः कर्तव्यस्तत्फलार्थिना।
तथा धर्मे परिचयः कर्तव्यस्तत्फलार्थिना।।"

(महाभारत - शान्तिपर्व ३०९.८)

"जैसे ज्ञानका फल चाहनेवालोंके लिए ज्ञानसे परिचित होना आवश्यक है, वैसे ही धर्मका फल चाहनेवाले मनुष्यको भी धर्मका परिचय प्राप्त करना आवश्यक है।। "

चोरी, हिंसा, अनृत, दम्भ, लोभ, क्रोध, गर्व, मद, भेद, वैर, अविश्वास, स्पर्द्धा, लम्पटता, द्यूत और मद्य - इन पन्द्रह अनर्थोंसे मुक्त अर्थ ही अर्थसंज्ञक और काम ही कामसंज्ञक हितसाधक होनेसे पुरुषार्थ कहने योग्य है। -

४. पुरुषार्थ

स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्द्धा व्यसनानि च।।
एते पञ्चदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम्।
तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत्।।
(श्रीमद्भागवत ११.२३.१८-१९)

अर्थ, धर्म, काम और मोक्षको वास्तव पुरुषार्थका रू प्रदान करनेके लिये चारोंके मलका शोधन आवश्यक है । फलेच्छ धर्मका मल है, लोभ धर्मका प्रतिबन्धक है। सङ्ग्रह अर्थका मल है, अदक्षता अर्थका प्रतिबन्धक है । आमोद-प्रमोद कामका मल है, शक्तिहीनता कामका प्रतिबन्धक है । असत्सहिष्णुता मोक्षक मल है , विज्ञानविमुखता मोक्षका प्रतिबन्धक है। निर्मल औ निष्प्रतिबद्ध पुरुषार्थचतुष्टयके सेवनसे सर्वविध कृतार्थता सम्भव है।-

अपध्यानमलो धर्मो मलोऽर्थस्य निगूहनम् ।
सम्प्रमोदमलः कामो भूयः स्वगुणवर्जितः।।
(महाभारत - शान्तिपर्व १२३.१०)

भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्या-
दीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः।
तन्माययातो बुध आभजेत्तं
भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा।।

४. पुरुषार्थ

अविद्यमानोऽप्यवभाति हि द्वयो-
ध्यातुर्धिया स्वप्नमनोरथौ यथा।
तत्कर्मसङ्कल्पविकल्पकं मनो
बुधो निरुन्ध्यादभयं ततः स्यात्।।
(श्रीमद्भागवत ११.२.३७,३८)

श्रीमद्भागवत ११.२३.१८,१९ के अनुसार चोरी, हिंसा, अनृत (झूठ), दम्भ, काम, क्रोध, गर्व, मद, भेद (फूट), वैर, अविश्वास, स्पर्द्धा, लम्पटता, द्यूत (जूआ) और मद्य (मदिरा) रूप पन्द्रह अनर्थोंके चपेटसे अर्थको विमुक्त रखना परमावश्यक है ।

तद्वत् कामको देशातिक्रम (उचित देशका अविचार), कालातिक्रम (उचित कालका अविचार), पात्रातिक्रम (गम्य, अगम्यरूप पात्रताका अविचार), अशुचि, क्रोध, असंयम, निन्दा, वाचालता, अश्लीलता, मदविह्वलता, अभक्ष्यभक्षण, अतिसामीप्य, अतिदूरता, अस्निग्धता और अनुदारतारूप पद्रह दोषोंसे विमुक्त रखना परमावश्यक है ।

तद्वत् धर्मको पुरुषार्थ–विहीनतासे बचानेके लिये अनधिकार चेष्टा, कालातिक्रम, देशातिक्रम, पात्रातिक्रम, दम्भ, द्रोह, अभिमान, ख्याति, असंयम, मिथ्या आहार–विहार, देवता–पितर–परलोक–परमेश्वर–परोपकार–पूर्वजन्म–पुनर्जन्ममें अनास्था, परोत्कर्षकी असहिष्णुता, आलस्य, असत्य और अधैर्यरूप पन्द्रह दोषोंसे विमुक्त रखना आवश्यक है ।

तद्वत् मोक्षको पुरुषार्थविहीनतासे बचानेके लिये पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा, मलसहिष्णुता, विक्षेपसहिष्णुता, आवरणसहिष्णुता, प्रमाद, अहङ्कार, हरि-गुरुविमुखता, द्वैतसहिष्णुता, श्रवण-मनन-निदिध्यासनसे पराङ्मुखता, निर्गुण-निर्विशेषके अस्तित्वमें अनास्था, परमेश्वरकी परोक्षता, आत्माकी परिच्छिन्नता तथा असच्चिदानन्दरूपताकी मान्यतारूप पद्रह दोषोंका परित्याग परमावश्यक है ।

यद्यपि आत्मदेव अद्वितीय सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म ही है ; तथापि अनादि अविद्या, काम और कर्मके वशीभूत प्राणी आत्मस्वरूपमें अध्यस्त अनात्मप्रपञ्चरूप द्वैतमें सत्ता, चित्ता और प्रियताका आधान कर व्यवहार दशामें अहन्ता-ममतारूप अभिनिवेशके कारण भयको प्राप्त होता है । यद्यपि सुषुप्तिमें भी द्वैतबीज अज्ञान विद्यमान रहता है, परन्तु द्वैताभिनिवेशके अभावमें अध्यासरहित द्वैत भयप्रद नहीं होता। यद्यपि व्यवहारदशामें ग्राह्य और उपेक्ष्य वस्तुएँ भी द्वैत हैं, परन्तु वे तत्काल भयप्रद सिद्ध नहीं होतीं; तथापि उनकी श्रमप्रदता, वियोगशीलता और उनसे उपरामताके कारण वे आत्मस्वरूपमें अध्यस्त अवश्य हैं; अतएव वरणीय नहीं हैं, भयप्रद अवश्य हैं । अभिप्राय यह है कि अनुकूल द्वैतकी भी स्थिर प्रेमास्पदता असिद्ध है, अतः भयप्रदता सिद्ध है । स्वप्न और मनोराज्यगत दृश्यप्रपञ्चके तुल्य ही बाह्यदृश्यका वास्तविक अस्तित्व नहीं है । अतः द्वैतप्रपञ्चके अस्तित्वकी अभिमति (स्वीकृति)

एवम् उसमें प्रीति और प्रवृत्ति तथा प्रतिकूलबुद्धिरूप अभिनिवेशसे मनको मुक्त कर सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मामें सन्निहित कर अभयप्रद मोक्षोपलब्धि ही जीवका चरम लक्ष्य और कर्त्तव्य है ।

ध्यान रहे, धर्मका वास्तव फल मोक्ष है। धर्मकी सार्थकता केवल अर्थोपलब्धिमें नहीं है। यह सत्य है कि धर्मानुष्ठानसे अर्थोपलब्धि भी सुनिश्चित है; परन्तु अर्थ केवल धर्मके लिए है, विषयोपभोगरूप काम धर्मका वास्तव फल नहीं है। अभिप्राय यह है कि धर्मानुष्ठानसे अर्थोपलब्धि सुनिश्चित है। धर्मानुष्ठानसे उपलब्ध अर्थकी सार्थकता पुनः धर्मानुष्ठानमें ही सन्निहित है। धर्मानुष्ठानमें विनियुक्त अर्थसे अवशिष्ट अर्थके द्वारा विषयोपभोगरूप कामकी उपलब्धि सुनिश्चित है। विषयोपभोगरूप कामकी सार्थकता जीवनलाभमें सन्निहित है, न कि इन्द्रियप्रीतिमें। जीवनलाभमें विनियुक्त कामसे अवशिष्ट कामके द्वारा इन्द्रियप्रीतिरूपा प्रसन्नता अर्थात् निर्मलता सुनिश्चित है। इन्द्रियप्रीतिरूपा निर्मलताकी सार्थकता इन्द्रियसमुदायरूप करणग्रामसे स्वयंको विविक्त और इनका प्रयोक्ता जीव समझनेमें है। ऐसे जीवकी सार्थकता भी जीवनधन अद्वय विज्ञानघन ब्रह्मसंज्ञक परमात्मस्वरूप भगवत्तत्त्वकी जिज्ञासामें सन्निहित है, न कि कर्मानुष्ठानके द्वारा लौकिक अर्थ, कामादिकी समुपलब्धि अर्थात् उत्क्रमण और पुनर्भवकी प्राप्तिमें सन्निहित है। -

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते।
नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः।।

४. पुरुषार्थ

कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता।
जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः।।
(श्रीमद्भागवत १.२.९,१०)

युक्त आहारके लिये यत्न अवश्य करना चाहिये । कारण यह है कि प्राणधारण आहारसे ही सम्भव है । प्राणधारण भी तत्त्वविचारके लिये कर्त्तव्य हैं । भगवत् - तत्त्वके विचारसे भगवत् - तत्त्वविज्ञान सुनिश्चित है । तत्त्वविज्ञानसे मोक्ष सुनिश्चित है । -

आहारार्थं समीहेत युक्तं तत्प्राणधारणम् ।
तत्त्वं विमृश्यते तेन तद्विज्ञाय विमुच्यते ।।
(श्रीमद्भागवत ११.१८.३४)

धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षरूप पुरुषार्थचतुष्टयकी संसिद्धिमें वेदोंका तात्पर्य सन्निहित है।

धर्मके अविरुद्ध अर्थ और काम ही पुरुषार्थ मान्य हैं, धर्मके विरुद्ध अर्थ और काम सर्वथा घातक सिद्ध हैं।

वेदप्रणहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः।
वेदो नारायणः साक्षात् स्वयम्भूरिति शुश्रुम।।
(श्रीमद्भागवत ६.१.४०)

"वेदोंमें जिन कर्मोंका विधान है, वे धर्म हैं और उनके विपरीत कर्म अधर्म हैं। वेद स्वयंप्रकाश नारायणके साक्षात् स्वरूप हैं, ऐसा हमने सुना है।।"

४. पुरुषार्थ

प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम्।
आवर्तेत प्रवृत्तेन निवृत्तेनाश्नुतेऽमृतम्।।
(श्रीमद्भागवत ७.१५.४७)

"प्रवृत्ति और निवृत्ति दो प्रकारके वैदिक कर्म हैं। व्यक्ति प्रवृत्तिके फलस्वरूप पुनर्भव प्राप्त करता है और निवृत्तिके फलस्वरूप अपुनर्भवरूप अमृतत्वसंज्ञक मोक्ष लाभ करता है।।"

द्वाविमावथ पन्थानौ यत्र वेदाः प्रतिष्ठिताः।
प्रवृत्तिलक्षणो धर्मो निवृत्तौ च सुभाषितः।।
कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया च प्रमुच्यते।
तस्मात्कर्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः।।
कर्मणा जायते प्रेत्य मूर्तिमान् षोडशात्मकः।
विद्यया जायते नित्यमव्यक्तं ह्यव्ययात्मकम्।।
(महाभारत - शान्तिपर्व २४१.६-८)

"प्रवृत्तिलक्षण धर्म और निवृत्तिके उद्देश्यसे प्रतिपादित धर्म - ये दो मार्ग हैं, जहाँ वेद प्रतिष्ठित हैं।।"

"काम्यकर्मके अनुष्ठानसे मनुष्य बन्धनमें पड़ता है और ज्ञानसे मुक्त हो जाता है। अतः पारदर्शी यति कर्म नहीं करते हैं।।"

"कर्म करनेसे मनुष्य मृत्युके पश्चात् सोलह तत्त्वोंसे विनिर्मित मूर्तिमान् शरीरको धारण करके पुनर्भव प्राप्त करता है। किन्तु ज्ञानके प्रभावसे जीव नित्य, अव्यक्त, अव्ययात्मक परमात्माको प्राप्त होता है।।"

४. पुरुषार्थ

"इन्द्रियाणीन्द्रियार्थांश्च स्वभावश्चेतना मनः।
प्राणापानौ च जीवश्च नित्यं देहेषु देहिनाम्।।"
"आश्रयो नास्ति सत्त्वस्य गुणाः शब्दो न चेतना।
सत्त्वं हि तेजः सृजति न गुणान् वै कथञ्चन।।"
"एवं सप्तदशं देहे वृतं षोडशभिर्गुणैः।
मनीषी मनसा विप्रः पश्यत्यात्मानमात्मनि।।"
(महाभारत - शान्तिपर्व २३९.१३-१५)

"श्रोत्रादि पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, उनके शब्दादि पञ्च विषय, सुख - दुःखादि गुणरूप स्वभाव, अन्तःकरणकी वृत्तिविशेष चेतना, मन, प्राण , अपान और जीव - देहधारियोंके शरीरमें सदा विद्यमान रहते हैं।।"

"पञ्चीकृत पञ्चभूतोंका तारतम्यजसंघातरूप स्थूल शरीर है। वह अपञ्चीकृत पञ्चभूत - विनिर्मित सूक्ष्मशरीरान्तर्गत सत्त्वसंज्ञक मन (अन्तःकरण) का केवल अभिव्यञ्जक - संस्थान है, न कि आश्रय। श्रोत्रादि पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, शब्दादि पञ्च विषय, तद्वत् सुख - दुःखादिसंज्ञक गुणरूप स्वभाव और अन्तःकरणकी ज्ञानात्मिका वृत्तिविशेष तेजःपदवाच्य चेतना भी सत्त्वसंज्ञक मन (अन्तःकरण) से उद्भासित ही हैं, न कि उसका आश्रय। सत्त्वसंज्ञक मन तेजःपदवाच्य चेतनाको समुद्भूत करता है और अपने परम कारण सत्त्व, रजस् तथा तमस् - संज्ञक त्रिगुणका अभिव्यञ्जक संस्थानमात्र है, न कि उपादानभूत समुत्पादक आश्रय।।"

४. पुरुषार्थ

"इस प्रकार मनीषी विप्र इस शरीरमें सन्निहित पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्चविषय, स्वभाव, चेतना, मन, प्राण, अपान, जीव - इन सोलह गुणोंसे आवृत सत्रहवें परमात्माका आवरणभङ्गमें प्रयुक्त और विनियुक्त सुसंस्कृत मनसे षोडश तत्त्वोंसे विविक्त जीवसंस्थानमें साक्षात्कार करता है।।"

"अव्यक्तं सर्वदेहेषु मर्त्येषु परमाश्रितम्।
योऽनुपश्यति स प्रेत्य कल्पते ब्रह्मभूयसे।। "
(महाभारत - शान्तिपर्व २३९.१८)

"जो इस विनाशशील सर्व शरीरोंमें अव्यक्तभावसे स्थित परमात्माका अनुदर्शन करता है, वह अनात्मवस्तुओंका अतिक्रमणकर ब्रह्मभावको प्राप्त होनेमें समर्थ होता है।।"

"वरिष्ठं सर्वधर्मेभ्यो ज्ञानं मोक्षैकसाधनम्।
ज्ञानान्नास्ति परो धर्म इति वेदार्थनिर्णयः।।"
(सूतसंहिता ४.२०.२७)

"सर्व धर्मोंकी अपेक्षा मोक्षका एकमात्र साधन ज्ञान ही वरिष्ठ है, ज्ञानसे उत्कृष्ट धर्म अन्य नहीं है। यह वेदार्थनिर्णय है।।"

"आत्मादिभिः कर्मभिरिन्ध्यमानो
धर्मे प्रवृत्तो द्युतिमान् सुखार्थी ।
परं हि तत् कर्मपथादपेतं
निराशिषं ब्रह्मपरं ह्यवैति।।"
(महाभारत - शान्तिपर्व २०१.१४)

४. पुरुषार्थ

"जब चित्त - शोधक तथा विशोधक नित्य कर्मोंके अनुष्ठानके अमोघ प्रभावसे रागादि - दोषोंसे विनिर्मुक्त निर्मल, निश्चल और दीप्तिमान् दर्पणतुल्य हो जाता है, तब वह स्वप्रकाश नित्य सुखका अभिलाषी होकर निर्वाणप्रद शमादि तथा श्रवणादि - संज्ञक ब्रह्मपरिमार्गणरूप निवृत्तिधर्ममें प्रवृत्त होकर काम तथा कर्मपथसे अतीत परब्रह्म परमात्माका साक्षात्कार कर लेता है।।"

"शरीरपक्तिः कर्माणि ज्ञानं तु परमा गतिः।
कषाये कर्मभिः पक्वे रसज्ञाने च तिष्ठति।।"
(श्रीमहाभारतशान्तिपर्व २७०.३८)

"कर्म स्थूल और सूक्ष्म शरीरकी शुद्धि करनेवाले हैं, परन्तु ज्ञान परम गतिरूप है। जब कर्मोंद्वारा चित्तके रागादि दोष पककर दग्ध होने योग्य हो जाते हैं, तब योगी रसरूप ज्ञानमें स्थित हो जाता है।।"

"ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात्पापस्य कर्मणः।
यथादर्शतले प्रख्ये पश्यत्यात्मानमात्मनि।।
(श्रीमहाभारतशान्तिपर्व २०४.८)

"पाप कर्मोंका क्षय होनेपर ही, अर्थात् दुरितमूलक मल और विक्षेपके निवृत्त होनेपर ही ज्ञानका उदय होता है। जैसे निर्मल और निश्चल दर्पणमें ही व्यक्ति अपने मुखचन्द्रका स्फुट दर्शन कर पाता है; वैसे ही शुद्ध और समाहित चित्तपर ही साधक

ज्ञानदृष्टिसे अनात्मवस्तुओंसे विविक्त आत्मतत्त्वका अधिगम कर पाता है।।"

"बीजान्यग्न्युपदग्धानि न रोहन्ति यथा पुनः।
ज्ञानदग्धैस्तथा क्लेशैर्नात्मा सम्पद्यते पुनः।।"
(श्रीमहाभारतशान्तिपर्व २११.१७)

"जैसे आगसे भूने हुए बीज नहीं उगते, वैसे ही ज्ञानाग्निसे अविद्यादि सर्वक्लेशोंके दग्ध हो जानेपर जीवात्मा पुनर्जन्म नहीं प्राप्त करता।।"

"लोहयुक्तं यथा हेम विपक्वं न विराजते।
तथापक्वकषायाख्यं विज्ञानं न प्रकाशते।।"
(श्रीमहाभारतशान्तिपर्व २१२.६)

"जैसे लोहयुक्त सुवर्ण आगमें पकाकर शुद्ध किये बिना अपने स्वरूपसे प्रकाशित नहीं होता, वैसे ही चित्तके रागादिदोषोंका नाश हुए बिना उसमें ज्ञानस्वरूप आत्मा प्रकाशित नहीं होता।।"

"चित्तस्य हि प्रसादेन हित्वा कर्म शुभाशुभम्।
प्रसन्नात्माऽऽत्मनि स्थित्वा सुखमानन्त्यमश्नुते।।"
(श्रीमहाभारतशान्तिपर्व १८७.३०)

"चित्त शुद्ध होनेपर वह शुभाशुभ कर्मोंसे अपना सम्बन्ध हटा कर प्रसन्नचित्त हो, आत्मस्वरूपमें स्थित हो जाता है अर्थात् अनात्मवस्तुओंसे विविक्त आत्ममात्र होकर अवशिष्ट रहता है और परमानन्दस्वरूप होता हुआ अनन्त आनन्दका अनुभव करता है।।"

"स्वरूपावस्थितिर्मुक्तिः" (महोपनिषत् ४.११६), "मुक्तिर्हित्वाऽन्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः" (श्रीमद्भागवत २.१०.६) - "अनात्मवस्तुओंके अनुरूप आत्ममान्यताका त्यागकर आत्मानुरूप आत्मस्थिति मुक्ति है।"

५.परिस्पन्द

अहिंसा , सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह नामक पञ्चशील मानवधर्म अर्थात् सामान्यधर्म हैं। ब्राह्मण , क्षत्रिय , वैश्य और शूद्र - संज्ञक चार वर्ण हैं। ब्रह्मचर्य , गृहस्थ , वानप्रस्थ और सन्यास- संज्ञक चार आश्रम हैं। यज्ञ, दान, तप, स्वाध्याय, शौर्य, वाणिज्य, उद्योग तथा सेवा वर्णधर्म हैं। स्वाध्यायाध्ययन (स्वोचित ग्रन्थानुशीलन), सर्वतर्पण, वंशवर्द्धन, संयम तथा ब्रह्मपरिमार्गण आश्रमधर्म हैं। जीवनमें अहिंसादि सामान्यधर्मको वर्ण और आश्रमभेदसे क्रमशः पूर्णरूपसे प्रतिष्ठित करनेकी अमोघविधा वर्णाश्रमधर्म है। अहिंसादि सामान्यधर्मसे विहीन वर्णाश्रम बाह्य आडम्बरमात्र रह जाता है। रावणादिके जीवनके अनुशीलनसे इस तथ्यकी परिपुष्टि होती है। वर्णाश्रमविहीन सामान्यधर्मके क्रियान्वयनका उपक्रम विस्फोटक प्रत्यवाय बन जाता है। अभिप्राय यह है कि अहिंसाके गर्भसे घोर हिंसा , सत्यके गर्भसे घोर असत्य, अस्तेयके गर्भसे घोर चौर्य , ब्रह्मचर्यके गर्भसे घोर व्यभिचार और अपरिग्रहके गर्भसे घोर परिग्रहका ताण्डवनृत्य परिलक्षित होता है। स्वयंको

अवैदिक ख्यापित करनेवाले बौद्धादिके शासनके अनुशीलनसे इस तथ्यकी परिपुष्टि होती है।

सुवर्णसामान्यके द्वारा कटक, मुकुट, कुण्डलादिके अस्तित्वकी रक्षा सिद्ध है तथा कटक, मुकुट, कुण्डलादि विशेषोंके द्वारा सुवर्णकी विशेष उपयोगिता चरितार्थ है।

सामान्यका बोध विलुप्त होने पर और विशेषका निरादर होने पर विप्लवपूर्ण वातावरण प्रस्तुत होता है। उदाहरणार्थ 'हम अमृतस्वरूप परमात्माकी उज्ज्वल अभिव्यक्ति होनेके कारण परमात्माके पुत्र हैं। हम परमात्मपरिवारके सदस्य परस्पर सगे - सम्बन्धी हैं। हम पहले प्राणी फिर मनुष्य हैं। हम पहले मनुष्य फिर हिन्दू हैं। हम पहले हिन्दू फिर ब्राह्मणादि हैं। हम पहले ब्राह्मणादि फिर कान्यकुब्जादि हैं। हम पहले कान्यकुब्जादि फिर वाजपेयी आदि हैं। ' इस तथ्यके विस्मरण तथा अनादरके कारण विश्वमें सर्वत्र विसङ्गितयाँ हैं।

आहारादिरूप कामकी सिद्धिके लिये अनिन्द्य कर्मरूप धर्मका सम्पादन विहित है । आहारादिमें प्रवृत्ति विषयोपभोगकी लम्पटताके लिये नहीं, अपि तु प्राणरक्षार्थ विहित है । प्राणसंधारण भगवत्तत्त्वकी जिज्ञासाके लिये विहित है । तत्त्वजिज्ञासा तत्त्वबोध प्राप्त कर दुःखोंके आत्यन्तिक उच्छेदकी भावनासे विहित है ।

आहारार्थं समीहेत युक्तं तत्प्राणधारणम् ।
तत्त्वं विमृश्यते तेन तद्विज्ञाय विमुच्यते ।।

(श्रीमद्भागवत ११.१८.३४)

अत्राहारार्थं कर्मकुर्यादनिन्द्यं
कुर्यादाहारं प्राणसंधारणार्थम् ।
प्राणाः संधार्यास्तत्त्वजिज्ञासनार्थं
तत्त्वं जिज्ञास्यं येन भूयो न दुःखम् ।।

(योगवासिष्ठ - निर्वाणप्रकरण २१.१०)

वर्णाश्रमविहीन सामान्यधर्मके क्रियान्वयनके फलस्वरूप सज्जनताके नामपर कायरता पलती है तथा शूरता और ओजस्विताके नामपर अराजकता परिलक्षित होती है। वर्तमानमें विश्वस्तरपर व्याप्त वर्णाश्रमविहीन अवैदिक शासनतन्त्रके अनुशीलनसे इस तथ्यकी परिपुष्टि होती है। वर्णाश्रमसंज्ञक विशेषधर्मसहित अहिंसादि सामान्यधर्मके सेवनके फलस्वरूप देवर्षि नारद , महर्षि भृगु - वसिष्ठ - विश्वामित्र - अगस्त्य - व्यास - मैत्रेयि - कण्व - शङ्कराचार्य -कालिदासादि नवरत्न - चाणक्य - रामदासादि; तद्वत् श्रीप्रह्लाद - पृथु - राम - युधिष्ठिर- सुधन्वा - विक्रमादित्य - चन्द्रगुप्त - शिवाजी आदिमें सुशीलता अर्थात् सज्जनता , ओजस्विता एवम् शूरता तीनोंका सन्निवेश था।

निःसन्देह सनातनधर्ममें वर्णभेद और आश्रमभेदका विस्तृत उल्लेख मन्वादि धर्मशास्त्रोंके अनुशीलनसे प्राप्त है । परन्तु वह भेद प्रकृतिप्रदत्त सर्वभेदोंका सदुपयोग कर निर्भेद आत्मस्वरूपमें मनः समाधानके उद्देश्यसे है ।

माना कि ब्राह्मणादिके शरीर पाञ्चभौतिक हैं और आत्मा भी सबमें एकरूप है, तथापि वर्णाश्रमादि भेदका तात्पर्य सर्व भेदभूमियोंका अतिक्रमण करनेके उपयुक्त जीवनमें बल और वेगका आधान है। भेदकी सिद्धिके लिये सनातनधर्ममें भेदका विधान नहीं है ।-

विशेषेण च वक्ष्यामि चातुर्वर्ण्यस्य लिङ्गतः ।
पञ्चभूतशरीराणां सर्वेषां सदृशात्मनाम् ।।
लोकधर्मे च धर्मे च विशेषकरणं कृतम् ।
यथैकत्वं पुनर्यान्ति प्राणिनस्तत्र विस्तरः ।।
(महाभारत, अनुशासनपर्व १६४.११,१२)

"अब मैं चारों वर्णोंका विशेषरूपसे लक्षण बता रहा हूँ। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र - इन चारों वर्णोंके शरीर पञ्चमहाभूतोंसे ही बने हुए हैं और सबमें आत्मतत्त्व भी एक ही है। फिर भी उनके लौकिक धर्म और विशेष धर्ममें विभिन्नता रखी गयी है । इसका उद्देश्य यही है कि सब अपने-अपने धर्मका पालन करते हुए पुनः एकत्वको प्राप्त हों । इसका शास्त्रोंमें विस्तारपूर्वक वर्णन है ।।"

सुसंस्कृत, सुशिक्षित, सुरक्षित, सम्पन्न, सेवापरायण और स्वस्थ व्यक्ति तथा समाजकी संरचना वर्णाश्रमधर्मकी विशेषता है। व्यासपीठ और शासनतन्त्रमें सैद्धान्तिक सामञ्जस्यसे सुबुद्ध, स्वावलम्बी और सत्यसहिष्णु व्यक्ति तथा समाजकी संरचना सम्भव है। शिक्षा, न्याय, रक्षा, अर्थ और सेवादि व्यवस्था समाजमें

५. परिस्पन्द

सबको सदा सुलभ रहे, इसकी अनादि परम्पराप्राप्त सनातन वैज्ञानिक विधाका नाम सनातन वर्णव्यवस्था है । वंशपरम्परासे इसे न स्वीकार करने पर वैकल्पिक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रादिकी संरचनामें समय तथा सम्पत्तिका अनावश्यक उपयोग और अपेक्षित संस्कारका सङ्कोच एवम् शिक्षा-रक्षादि विभागोंमें व्यक्तिकी सङ्ख्याका असन्तुलन तथा वर्णसङ्करता एवम् कर्मसङ्करता सुलभ रुग्णतादि विविध दोषोंका प्रादुर्भाव सुनिश्चित है।

सनातनधर्ममें सबकी जीविका जन्मसे सुरक्षित है । वर्तमान आरक्षणपद्धतिसे प्रतिभा और प्रगतिका नाश, प्रतिशोधकी भावना और परतन्त्रता तथा पतन सुनिश्चित है ।

सनातनधर्ममें फलचौर्य नहीं है । ब्रह्मणादि अपने-अपने कर्मोंका भगवत्समर्पण बुद्धिसे अनुष्ठान कर सद्गति प्राप्त करते हैं।

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।

(श्रीमद्भगवद्गीता १८.४५)

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ।।

(श्रीमद्भगवद्गीता १८.४६)

सनातनधर्ममें फलचौर्य न होनेपर तथा भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य, उत्सव - त्योहार, रक्षा, सेवा, न्यायकी व्यवस्था सदा सबको सन्तुलितरूपसे सुलभ होनेपर भी इसके प्रति विश्वस्तरपर अविश्वसनीयताका और अनास्थाका मुख्य हेतु योजनाबद्ध ढङ्गसे दुष्प्रचार तथा स्वतन्त्रताके बादसे अबतकका

सत्तालोलुपता, अदूरदर्शितापूर्ण भारतका शासनतन्त्र और दिशाहीन व्यापारतन्त्र है।

पाश्चात्य शिक्षापद्धति और तदनुरूप जीविकोपार्जनकी विधासे संयुक्त परिवारका पाश्चात्य जगत् के तुल्य उच्छेद सुनिश्चित है । संयुक्त परिवारके उच्छेदसे सनातन कुलधर्म, जातिधर्म, कुलदेवी, कुलदेवता, कुलगुरु, कुलाचार, कुलसंस्कृतिका विलोप तथा वर्णसङ्करता और कर्मसङ्करता सुनिश्चित है । इस प्रकार सनातनधर्मकी रक्षाके लिये पाश्चात्य शिक्षापद्धति और जीविकोपार्जनकी विधाका सनातन संस्कृतिके अनुरूप उपयोग और विनियोग नितान्त अपेक्षित है । तदर्थ धर्मनियन्त्रित पक्षपातविहीन शोषणविनिर्मुक्त सर्वहितप्रद शासनतन्त्रकी स्थापनाकी भावनासे स्वस्थव्यूह - रचनापूर्वक अथक और अमोघ प्रयास अत्यावश्यक है ।

स्वतन्त्र भारतमें सत्तालोलुपता और अदूरदर्शिताके वशीभूत शासनतन्त्रने पार्टी और पन्थोंमें देशको विभक्त कर तथा देशवासियोंको स्वयं और गिने-चुने सगे-सम्बन्धियों तक सीमित स्वार्थान्ध बनाकर राष्ट्रकी विशेषकर हिन्दुओंके अस्तित्व और आदर्शकी हत्या की है।

वैज्ञानिक अनुसन्धानों और आविष्कारोंको समुचित दिशा देनेकी क्षमता सनातनधर्मके अतिरिक्त अन्यत्र दुर्लभ है। यान्त्रिक युगमें पृथ्वीके धारक गोवंश, विप्र, वेद, सती, सत्यवादी, निर्लोभ तथा दानशीलोंके संरक्षण एवम् धर्म, अर्थ, काम और मोक्षसिद्धिके

अनुकूल समयका सदुपयोग सर्वथा असम्भव है। प्रगतिके नाम पर धर्म, अर्थ, काम और मोक्षसंज्ञक पुरुषार्थसे विहीन जीवन तथा प्रतिभाके नाम पर मृत्युग्रस्त, जड़ और दुःखप्रद शरीर तथा संसारकी दासता ही सनातनधर्मविहीन विकासका पर्यवसान है। सनातनशास्त्रोंमें पृथ्वीके धारक तत्त्वोंकी मुख्य सङ्ख्या चौदह है। जिनसे यज्ञादि धर्मोंकी निष्पत्ति और पुरुषार्थ चतुष्टयकी सिद्धि सम्भव है । -

गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः ।
अलुब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धार्यते मही ।।
(स्कन्दपुराणान्तर्गत काशीखण्ड २.९०)

"गायों, विप्रों, वेदों, सतियों, सत्यवादियों, लोभरहितों और सातवें दानशीलोंके द्वारा पृथिवी धारण की जाती है ।।"

धर्म, काम, अर्थके विधायक वसु और वासुकि, मोक्षके विधायक अनन्त तथा कपिल एवम् पुरुषार्थचतुष्टय सिद्धिमें उपकारक काल - संज्ञक ये सात पृथ्वीके धारक हैं। -

धर्मः कामश्च कालश्च वसुर्वासुकिरेव च ।
अनन्तः कपिलश्चैव सप्तैते धरणीधराः ।।
(महाभारत - अनुशासनपर्व १५०.४९)

केवल अर्थ और काम अर्थात् धन और मानके लिये विद्या, शिक्षा तथा कलाका उपयोग करनेवाले धर्मद्रोही हैं । कारण यह है कि धर्म तो धर्म है ही; उससे अर्थ, काम ही नहीं;

अपितु मोक्षरूप चरम पुरुषार्थ की सिद्धि भी सम्भव है ।-

आजिजीविषवो विद्यां यशःकामौ समन्ततः ।
ते सर्वे नृप पापिष्ठा धर्मस्य परिपन्थिनः ।।
(महाभारत-शान्तिपर्व १४२.१२)

"नृप ! जो जीविकाकी इच्छासे विद्याका उपार्जन करते हैं, सर्वत्र उसी विद्याके बलसे यश और मनोवाञ्छित पदार्थोंको प्राप्त करनेकी इच्छा रखते हैं, वे सभी पापात्मा और धर्मद्रोही हैं ।।"

विश्व अमृतस्वरूप सर्वेश्वरकी अभिव्यक्ति है; अत एव हम अमृतस्वरूप सर्वेश्वरके पुत्र हैं। पृथिवी, पानी, प्रकाश, पवन, आकाशसहित समस्त स्थावर - जङ्गम प्राणी विश्वेश्वरके परिवारके सदस्य परस्पर सगे - सम्बन्धी हैं। अत एव सबके अस्तित्व और आदर्शकी रक्षाकी भावनासे सर्वहितप्रद कर्म करना हमारा पवित्र दायित्व है।

व्यक्तिगत जीवनकी संरचना और पोषणमें पृथिवी, पानी, प्रकाश, पवन, आकाशके सहित स्थावर तथा जङ्गम प्राणियोंके योगदानका सुसमीक्षण करते हुए इन्हें सुव्यवस्थित रखनेके लिए प्रयासरत रहना प्रत्येक मनुष्यका दायित्व है।

शील, स्नेह, शुचिता, सुन्दरता, सुमति तथा सम्पत्तिसे सम्पन्न व्यक्ति तथा समाजकी संरचनाकी भावना एवम् तदर्थ प्रयत्नसे सम्पन्न जीवन आदर्श मान्य है। अतएव सुसंस्कृत, सुशिक्षित,

सुरक्षित, सम्पन्न, स्वावलम्बी और सेवापरायण निज एवम् पर - जीवनकी संरचनाके लिए कटिबद्धता नितान्त अपेक्षित है। निज तथा पर मेधा, रक्षा, वाणिज्य और श्रम - शक्तिका सदुपयोग ही विहित है; न कि अनर्गल दोहन तथा दुरुपयोग उचित है।

स्वार्थके साथ परमार्थका, नीतिके साथ प्रीतिका ; तद्वत् मेधाके साथ श्रमका एवम् विद्याके साथ कलाका, दयाके साथ विवेकका, स्वच्छताके साथ शुद्धिका ध्यान रखना आवश्यक है।

मल, मूत्रादिके विसर्जनसे प्राप्त समष्टिगत अशुद्धि तथा दुर्गन्धके वारणके लिए शास्त्रसम्मत विधाका पालन और यज्ञादिका अनुष्ठान अपेक्षित है।

समष्टि - हितकी भावनासे व्यष्टि - जीवनकी संरचना सफलताकी कुञ्जी है। निःशङ्क, निर्दोष, समदर्शी, संयमी और सबके हितमें संलग्न सत्पुरुष दैवीसम्पत्सम्पन्न मान्य हैं। यह तथ्य 'सर्वभूतहिते रताः' (श्रीमद्भगवद्गीता ५.२५ , १२. ४) के अनुशीलनसे सिद्ध है। -

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहितेरताः।।
(श्रीमद्भगवद्गीता ५.२५)

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः।।
(श्रीमद्भगवद्गीता १२.४)

५. परिस्पन्द

अभ्युदय और निःश्रेयसके रस तथा रहस्यके अनभिज्ञ होनेके कारण अनर्गल प्रवृत्ति तथा निवृत्तिके पक्षधर एवम् शौचाचार, सदाचार, दया, सत्य, संयमसे सुदूर धर्म और ईश्वरसे विमुख अशुभ अर्थ और कामके किङ्कर स्वेच्छाचारी आसुरी सम्पत्सम्पन्न म्लेच्छ हैं; वे स्वयंके तथा सबके हितके अपहारक हैं। यह तथ्य **'क्षयाय जगतोऽहिताः'** (श्रीमद्भगवद्गीता १६.९) के अनुशीलनसे सिद्ध है।

समष्टि हितके अविरुद्ध और सर्वथा अनुकूल व्यक्तिगत स्वार्थकी सिद्धि मानवता है। यही स्वहितका प्रशस्त प्रक्रम है। तत्त्वदर्शी महर्षियों और मुनियों द्वारा दृष्ट और प्रयुक्त लौकिक तथा पारलौकिक उत्कर्ष के साधनों को परिस्कृत और क्रियान्वित करनेमें हम अवश्य ही अधिकृत हैं; परन्तु कृषि, भवन, वाणिज्य, यज्ञ, दान, तप आदिसे सम्बद्ध सनातन विज्ञानका परित्याग कर नवीन उद्भावना और प्रयोगका आलम्बन लेने पर विकासके स्थानपर विनाशका पथ ही प्रशस्त कर सकते हैं । अत एव प्राचीन दर्शनका देश, काल, परिस्थितिके अनुरूप अवबोध और क्रियान्वयनका प्रक्रम ही सर्वहितप्रद और सुखप्रद है । -

अस्मिँल्लोकेऽथवामुस्मिन्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
दृष्टा योगाः प्रयुक्ताश्च पुंसां श्रेयः प्रसिद्धये।।
तानातिष्ठति यः सम्यगुपायान् पूर्वदर्शितान्।
अवरः श्रद्धयोपेत उपेयान् विन्दतेऽञ्जसा ।।

५. परिस्पन्द

तानननादृत्य योऽविद्वानर्थानारभते स्वयम्।
तस्य व्यभिचरन्त्यर्था आरब्धाश्च पुनः पुनः ।।
(श्रीमद्भागवत ४.१८.३-५)

"तत्त्वदर्शी मुनियोंने इस लोक और परलोकमें मनुष्योंके कल्याण करनेके लिये कृषि, अग्निहोत्रादि बहुतसे उपाय निकाले और काममें लाये हैं । उन प्राचीन ऋषियोंके बताये हुए उपायोंका इस समय भी जो श्रद्धापूर्वक भलीभाँति आचरण करता है, वह सुगमतासे अभीष्ट फल प्राप्त कर लेता है । परन्तु जो अज्ञानी उनका अनादर करके अपने मनःकल्पित उपायोंका आश्रय लेता है, उसके सब उपाय और प्रयत्न पुनः-पुनः निष्फल होते हैं ।।"

अत एव भौतिकविधासे जीवनकी सार्थकता असम्भव है। लौकिक उत्कर्ष भी प्राचीन महर्षियोंद्वारा चिर परीक्षित तथा प्रयुक्त वैदिकार्षविधासे ही सम्भव है।

६. परिवेदना

सनातन वैदिक - आर्य - हिन्दुओंका उदात्त सिद्धान्त प्राय: ग्रन्थोंतक सीमित रह गया है। कूटज्ञ मेकालेकी चलायी गयी शिक्षा और तदनुकूल जीविकापद्धतिने संयुक्त परिवारको प्राय: विखण्डित कर दिया है। संयुक्त परिवारके विखण्डित होनेके कारण सनातन कुलधर्म, जातिधर्म, वर्णधर्म, आश्रमधर्म, कुलदेवी, कुलदेवता, कुलपुरोहित, कुलवधू, कुलवर, कुलपुरुष. कुलाचार , कुलोचित जीविका तथा कुलीनताका द्रुतगतिसे विलोप हो रहा है।

सनातनसंस्कृतिमें सबको नीति तथा अध्यात्मकी शिक्षा सुलभ थी। वर्तमान परिप्रेक्ष्यमें साक्षरताको प्रश्रय और प्रोत्साहन प्राप्त होनेपर भी परिश्रमके प्रति अनभिरुचि और न्यायपूर्वक जीविकोपार्जनके प्रति अनास्थाके कारण बेरोजगारी, आत्महत्यामें प्रवृत्ति, आक्रोश तथा चतुर्दिक् अराजकतापूर्ण वातावरण महामत्स्यन्यायको प्रोत्साहित कर रहा है।

आर्थिक विपन्नता, कामक्रोधकी किङ्करता और लोभकी पराकाष्ठाने मनुष्योंको पिशाचतुल्य उन्मत्त बनाना प्रारम्भ किया है।

६. परिवेदना

धन, मान, प्राण तथा परिजनमें समासक्त तथा पार्टी और पन्थोंमें विभक्त हिन्दु अपने अस्तित्व और आदर्शको एवम् भारतके महत्त्वको सुव्यवस्थित रखनेमें सर्वथा असमर्थ है।

सन्धि, विग्रह (युद्ध), यान (आक्रमण), आसन (आत्मरक्षा), द्वैधीभाव (कपट) और समाश्रय (मित्रोंसे सहयोग लाभकर शत्रुजय)- संज्ञक छह राजगुणरूप षड्यन्त्र - कारियोंद्वारा प्रयुक्त छलबलसमन्वित साम, दान, दण्ड, भेद, उपेक्षा, इन्द्रजाल और मायाके विवश हिन्दु हतप्रभ, मूर्च्छित तथा मृतप्राय हो चुका है।

सत्तालोलुपता और अदूरदर्शिताके कारण दिशाहीन शासनतन्त्र तथा व्यापारतन्त्रके वशीभूत हिन्दुओंके द्वारा ही हिन्दुओंके अस्तित्व और आदर्शका अपहण द्रुतगतिसे हो रहा है।

क्लबके माध्यमसे अश्लील मनोरञ्जन तथा मादक द्रव्योंकी दासता पल रही है। क्लासके माध्यमसे शील एवम् सम्पत्तिका अपहरण हो रहा है। कोर्टके माध्यमसे शील, सम्पत्ति, स्नेह एवम् समयका अपहरण हो रहा है। विदेशी षड्यन्त्रकारियोंके अग्रदूत, पृष्ठपोषक और यन्त्रभूत अपहारक हिन्दु घातक सिद्ध हो रहे हैं।

मेकालेके द्वारा प्रयुक्त और विनियुक्त 'कोएजुकेशन' (सहशिक्षा), कोर्ट, क्लब, वर्णविहीनता, वेदोंके प्रति अनास्था और उनकी असङ्गत व्याख्या एवम् विविध पन्थोंकी मान्यता नामक छह कूटनीति सनातनसंस्कृतिके विलोपमें पर्याप्त हेतु है।

उन्होंने 'कोएजुकेशन' (सहशिक्षा) के नामपर शीलके तथा कोर्टके नामपर सम्पत्ति तथा स्नेहके विलोपका षड्यन्त्र चलाया । उन्होंने क्लबके नामपर अश्लील मनोरञ्जन और मादक द्रव्यकी दासताका बीज बोया । उन्होंने सनातनपरम्पराप्राप्त वर्णविहीनताके नामपर सनातन कुलधर्म, जातिधर्म, कुलदेवी, कुलदेव, कुलगुरु आदिके विलोपका एवम् वर्णसङ्करता और कर्मसङ्करतासे दूषित सामाजिक संरचनाका षड्यन्त्र चलाया। उन्होंने वेदोंके प्रति अनास्था और उनकी दूषित व्याख्यासे सनातनसंस्कृतिके विलोपका अभियान चलाया। उन्होंने विविध पन्थोंकी मान्यताके नामपर सार्वभौम धर्मगुरुके रूपमें शङ्कराचार्योंके स्वस्थमार्गदर्शनसे देशको वञ्चितकर भारतके विखण्डनका षड्यन्त्र क्रियान्वित किया और आर्योंके लौकिक एवम् पारलौकिक उत्कर्ष और मोक्षका मार्ग अवरुद्ध किया।

वर्तमानमें विकासके नामपर भोजन (अन्न, जल), वस्त्र, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य (चिकित्सा), उत्सव - त्योहार, रक्षा, सेवा तथा न्याय एवम् विवाहके क्षेत्रमें ह्रास तथा विनाशोन्मुखता ही परिलक्षित है।

शुद्ध और पर्याप्त अन्न तथा जल सबको सुलभ नहीं है।

शील, शुद्धि, स्वास्थ्य, शोभा , सुरक्षा और उपयोगिताके सर्वथा विपरीत वस्त्रोंका प्रचार - प्रसार घातक है।

नगर तथा महानगर - परियोजनाके नामपर ग्राम, वन

भूधर (पर्वत), खनिज द्रव्योंका द्रुत गतिसे विलोप जनजीवनके लिए भीषण अभिशाप है।

सुवृष्टिके स्वाभाविक स्रोत वन, पर्वत और शास्त्रसम्मत यज्ञका विलोप, विद्युत्, सिंचाई , स्वच्छता - आदि विकाशके नामपर सरिताओं, जलाशयों, समुद्रोंका शोषण तथा अशुद्धिकरण एवं यान्त्रिकविधासे प्रचुर जलकर्षणके कारण भूगर्भगत जलका स्खलन जलविहीन विनाशोन्मुख भूमण्डलका सूचक है।

नीति तथा अध्यात्मविहीन शिक्षा तथा शिक्षण - संस्थानोंका केवल धन, मानके लिए उपयोग एवम् विनियोग धर्मद्रोह और अराजकताका स्रोत है।

शुद्ध सुखद पृथ्वी, पानी, प्रकाश, पवन, आकाश, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, सङ्कल्प, विकल्प, निश्चय, स्मरण और गर्वके अभावमें स्वस्थजीवन सुदुर्लभ है।

केवल तात्कालिक मनोरञ्जन और मादक द्रव्योंके प्रचलनादिके कारण उत्सव तथा त्योहारकी दिशाहीनता सुसंस्कृत जीवनके लिए घातक है।

उन्मादपूर्ण जन - जीवन, घातक अस्त्र - शस्त्रोंकी बहुलता, सम्वाद और सञ्चार साधनोंकी सघनता तथा क्षात्रधर्मविहीनताके कारण प्रत्येक व्यक्ति और संस्थान अरक्षित है।

सार्वभौम स्नेह तथा सहानुभूतिके अभावमें सेवाका

विलोप परिलक्षित है। परम्पराप्राप्त जीविकाका विलोप तथा महायन्त्रोंके प्रचुर प्रयोगके कारण अधिकांश व्यक्तियोंका शोषण अनिवार्य है; अत: यान्त्रिक प्रकल्पोंका उपयोग तथा विनियोग जनसामान्यकी विपन्नतामें सुनिश्चित हेतु है।

दिशाहीन न्यायतन्त्र समय, स्नेह, शील, सम्पत्तिके शोषणका संस्थान सिद्ध है।

विवाहका विकृत प्रक्रम स्नेह, शील , स्वास्थ्य और शान्तिका घातक एवम् वर्णसङ्करता तथा कर्मसङ्करताका विधायक है।

पूर्वोक्त भोजनादि सर्व प्रकल्प देहात्मवादसे सम्भावित होनेके कारण मृत्यु, मूढता तथा दु:खकी अत्यन्त सुलभताके सूचक हैं। भौतिक सुविधाकी प्रचुरता और धर्म तथा अध्यात्मसे सुदूरताके फलस्वरूप धृतिविहीनता (असहिष्णुता) और बहिर्मुखताकी पराकाष्ठा तथा शोकनिमग्नता सर्वत्र व्याप्त है।

'परन्तु प्रशस्त मार्ग तथा द्रुतगति - सम्पन्न यातायातके साधनोंकी विश्वस्तरपर बहुलता तथा विद्युत् - सम्पन्नताके कारण मार्गविहीन, द्रुतसाधनहीन, अन्धकारमय प्रकृति - परतन्त्र अतीतकी अपेक्षा सरल, सुगम, सुखद प्रगतिको स्वीकार करनेकी बाध्यता है ।'

उक्त मनोभाव भी श्रवण सुखद किन्तु आपात रमणीय ही परिलक्षित है। प्रकाश और प्रशस्त पथकी सुलभताके कारण रात्रिके कार्यका दिनमें तथा दिनके कार्यका रात्रिमें सम्पादन

आलस्य, कर्कशता, आक्रोश, अराजकता तथा रुग्णता अनिवार्य है। वाहन तथा यन्त्रोंके सञ्चालनके लिए विद्युत्, डीजल, पेट्रोल आदिके अत्यधिक उपयोगसे प्रज्ञाशक्ति और प्राणशक्तिकी मन्दता, पृथिव्यादि भूत चतुष्टयकी मलिनता, दैवी प्रकोप, गोवंश, विप्र, वेद, सती, सत्यवादी, अलुब्ध (निर्लोभ), दानशील, गङ्गादि, हिमालयादि, तीर्थादि दिव्य अभिव्यक्तियों तथा सुवर्णादि, चन्दनादि दिव्य वस्तुओंका विलोप सुनिश्चित है।

महाययन्त्रोंके आविष्कार और प्रचुर प्रयोगसे आध्यात्मिक उत्कर्षका विलोप ही नहीं; अपितु भौतिक उत्कर्षका अवरोध और अन्त भी सुनिश्चित है। कारण यह है कि **देहात्मवाद और पञ्चभूतोंके अनर्गल दोहनवादका नाम भौतिकवाद है।** देहात्मवादसे अध्यात्मवादका विलोप सुनिश्चित है तथा पञ्चभूतोंके अनर्गल दोहनसे भौतिक उत्कर्षका अवरोध और अन्त भी अनिवार्य है।

उक्त हेतुओंसे महायन्त्रोंके निर्माणको श्रीमन्वादि महर्षियोंने उपपातकोंमें परिगणित किया है।

दालमें नमक, मिर्च तथा मशालाके तुल्य एवम् आँखोंमें अंजनके तुल्य यन्त्रोंका सीमित तथा सुखद प्रयोग ही श्रेयस्कर है।

स्रष्टा सर्वेश्वरने जिस प्रयोजनसे सृष्टिकी संरचना की है तथा जिससे सर्वहित सुनिश्चित है, उसका ज्ञान प्राप्तकर तथा

ध्यान रखकर ही जीवन तथा जगत् का उपयोग तथा विनियोग कर्त्तव्य और सुमङ्गल है।

धर्मान्तरण, परिवारनियोजन, गर्भपात, गोवध, मेधा - रक्षा - वाणिज्य और श्रमशक्तिके अनर्गल दोहन तथा दुरुपयोग आदि दुश्चक्रके कारण सनातन - आर्य - हिन्दुओंका अस्तित्व तथा आदर्श तीव्रगतिसे विलुप्त हो रहा है।

विकासके नामपर गोवंश, विप्र, वेद, सती, सत्यवादी, निर्लोभ , दानशील, गङ्गादि; तद्वत् वन, पर्वत, सागर, तीर्थ, आश्रम, पुरी, सनातनशिक्षापद्धति, कृषि, कुटीर तथा लघु उद्योग, खनिज पदार्थ, सेवाप्रकल्पका विलोप , अराजक तत्त्वोंका राष्ट्रियस्तरपर वर्चस्व तथा देशकी सीमाका सङ्कोच, धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष - संज्ञक पुरुषार्थ चतुष्टयसे विहीन व्यक्ति और समाजका निर्माण निःसन्देह विचारशीलोंको विह्वल बनानेवाला है।

स्वयंको अवैदिक कहनेवाले जैन तथा बौद्धोंके शासन और वर्चस्वके समय भी अनुजकल्प अन्त्यजोंने ब्राह्मणादिका साथ नहीं छोड़ा। तद्वत् विधर्मियोंके शासनकालमें भी उन्होंने ब्राह्मणादिका साथ नहीं छोड़ा। परन्तु अङ्गरेजोंकी दुरभिसन्धिके वशीभूत स्वयंको वैदिक तथा सुधारक माननेवाले गिने - चुने दिशाहीन हिन्दुओंके चपेटमें पड़कर अन्त्यजोंने ब्राह्मणादिका साथ छोड़ दिया।

अहिंसादिकी दिशाहीन परिभाषाने सज्जनताके नामपर अन्यायसहिष्णुता , कायरता तथा शूरता और ओजस्विताके नामपर

आतङ्कप्रिय उग्रवादिताको प्रश्रय दिया है; जो कि सनातनसंस्कृतिके सर्वथा विरूप है। सनातनसंस्कृतिमें सुशीलता, शूरता और सत्पुरुषोंकी अनुगमनशीलताके कारण ओजस्वितासे सम्पन्नता सज्जनता है। –

रिपुसूदन पद कमल नमामी। सूर सुसील भरत अनुगामी।।

(रामचरितमानस १. १७. ९.)

स्वतन्त्र भारतमें जैन, बौद्ध, सिक्ख, अन्त्यज अपने उद्गमस्रोतसे वियुक्त होकर अपने अस्तित्व तथा आदर्शको विलुप्त कर रहे हैं और ब्राह्मणादि इनसे विहीन होकर अङ्गहीन क्षीण हो रहे हैं।

इस विसङ्गतिको विलुप्त करनेकी भावनासे परस्पर सद्भावपूर्ण सम्वादके द्वारा भ्रम तथा भूलका निवारण अपेक्षित है।

सनातनधर्ममें फलचौर्य नहीं है । ब्रह्मणादिके सदृश शूद्रादि भी अपने–अपने कर्मोंका भगवत्समर्पण बुद्धिसे अनुष्ठान कर सिद्धि, सद्गति और मुक्ति प्राप्त करनेमें अधिकृत हैं । यह तथ्य **"स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिः लभते नरः ।" (श्रीमद्भगवद्गीता १८.४५), "स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ।।" (श्रीमद्भगवद्गीता १८.४६)**के अनुशीलनसे सिद्ध है। इस रहस्यके अनुशीलन तथा निरूपणसे भ्रमका निवारण कर्त्तव्य है।

मानवजीवनका दार्शनिक, वैज्ञानिक और व्यावहारिक धरातलपर अद्भुत महत्त्व है। इसमें कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय तथा प्राणोंके सहित अन्तःकरणका सम्यक् विकास है। यह कर्मायतन,

भोगायतन तथा ज्ञानायतन होनेके कारण देवदुर्लभ मान्य है। इसमें धर्मसम्पादन, वैराग्य, भक्ति और भगवत्प्रबोधकी शक्ति सन्निहित है। अत एव स्त्री तथा शूद्रादिकी भी देवदुर्लभता निसर्गसिद्ध है। ऐसी स्थितिमें उन्हें मानवोचित स्नेह तथा सहानुभूतिसे वञ्चित रखना द्विजत्वके नामपर प्रबल प्रमाद है।

'शास्त्रसम्मत वर्णाश्रमविभेद दार्शनिक, वैज्ञानिक और व्यावहारिक धरातलपर परम महत्त्वपूर्ण है, न कि रागद्वेषमूलक। इसका प्रयोजन प्रकृतिप्रदत्त सर्वभेदोंका सदुपयोग करते हुए सुखमय समाजकी संरचना और समस्त भेदभूमियोंसे अतिक्रान्त निर्भेद आत्मस्थिति तक गति है।' इस रहस्यकी अनभिज्ञता और इसमें अनास्था ही परस्पर स्नेह तथा सहानुभूतिविहीन अमर्यादित गतिविधिका कारण है।

''कर्मणा जायते भक्तिर्भक्त्या ज्ञानं प्रजायते।
ज्ञानात्प्रजायते मुक्तिरिति शास्त्रेषु निश्चयः।।''
(शिवपुराण - उमा. ५१.१०)

''निष्कामभावसे अनुष्ठित स्वकर्मानुष्ठानके अमोघ प्रभावसे भगवद्भक्ति सुलभ होती है। भक्तिसे तत्त्वज्ञान समुत्पन्न होता है। ज्ञानसे कैवल्य मोक्ष निष्पन्न होता है। यह शास्त्रोंमें सुनिश्चित तथ्य है।।''

सनातनसंस्कृतिके अनुरूप शासनकालमें देवियाँ गृहमन्त्रालयके दायित्वका निर्वाह करती थीं। वे सर्वथा शीलसम्पन्न

तथा पति, श्वसुर, पुत्र, पिता तथा भ्राताके द्वारा संपोषित और सुरक्षित थीं। वे सावित्री, अनसूया, सीता, स्वयंप्रभा, गार्गी, मैत्रेयी, सुलभा, उभयभारती - सरीखी सिद्धा, सुशीला, विदुषी और योगिनी थीं।

ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ तथा सन्यासी और अधिकांश सद्गृहस्थ वनमें निवास करते थे। अतः कोल - भील - किरातादि ब्रह्मर्षियों , राजर्षियों और वैश्यर्षियोंसे सदा लालित तथा पालित रहनेके कारण उनके अनुगामी रहते थे।

सनातनसंस्कृतिके सर्वथा अनुरूप जीवनप्रणालीमें कुटीर तथा लघु उद्योगके सम्पादक शूद्रादिको वैश्य उचित लाभ देकर उन सामग्रियोंका उचित मूल्यपर विक्रय करते थे। वैश्य कृषि तथा गोपालनके द्वारा भी जीविकोपार्जन करते थे। क्षत्रिय शासन तथा धर्मयुद्धके द्वारा जीविकोपार्जन करते थे। ब्राह्मण अध्यापन, दान, यज्ञादि विविध अनुष्ठान और खेत - खलिहान तथा अनाजमण्डीमें अवशिष्ट अन्नके सञ्चयरूपा शिलोञ्छवृत्तिसे , अयाचितवृत्तिसे , यज्ञ - दान - अतिथिसेवा- देवपितृपोषण - तर्पणादि दैनिन्दिनकृत्यका निर्वाह करते थे। ब्रह्मचारी और सन्यासी भिक्षावृत्तिसे तथा वानप्रस्थ कन्द - मूल तथा फलके चयनसे जीवननिर्वाह करते थे।

उक्तरीतिसे सनातनसंस्कृतिमें सबकी जीविका जन्मसे आरक्षित थी।

६. परिवेदना

विद्वेष और अदूरदर्शितापूर्ण वर्तमान आरक्षणपद्धतिमें उभयपक्षकी प्रतिभाकी हानि, प्रगतिकी हानि, आरक्षणमें अधिकृतकी अपेक्षा नौकरीकी कमीके कारण अप्रायोगिकता, प्रतिशोधकी भावना और राष्ट्रकी पतनोन्मुखता, परतन्त्रता या विखण्डतारूप पाँच दोष सन्निहित हैं।

द्यूत, मद्य, हिंसादि अनर्थपर्यवसायी अर्थ; मूर्च्छा और मृत्युपर्यवसायी काम; वर्णसङ्कर्णता तथा कर्मसङ्करतामूलक धर्म और देहात्मभावित मोक्षकी गाथाने; तद्वत् वर्णनिरपेक्ष कर्मकाण्ड, विवेक तथा वैराग्यनिरपेक्ष उपासनाकाण्ड, अहिंसा-सत्यादि - यमविरहित शौचसन्तोषादि नियम - निरपेक्ष योग, विवेकवैराग्यादिनिरपेक्ष वेदान्त ; तद्वत् धर्मनिरपेक्ष शासनतन्त्रने पुरुषार्थविहीन मानवसमाजको प्रेय तथा श्रेय दोनोंसे वञ्चित बना दिया है।

जिन अर्थ और कामपर लट्टू होकर विश्वस्तरपर सामाजिक धरातलपर मनुष्योंने प्रबल बहुमतसे धर्म और मोक्षका परित्याग किया है, उन्हें मोक्षपर्यवसायी धर्मके बिना पुरुषार्थ बना पानेकी क्षमता न होनेके कारण पुरुषार्थविहीन मानवसमाजने स्वयंके और पृथिव्यादि पञ्चभूतोंके सहित अन्य प्राणियोंके विकृत तथा विलुप्त होनेका बानक बनाकर सबके हितपर पानी फेरनेका काम किया है।

प्रवृत्तिको निवृत्ति तथा निवृत्तिको निर्वृति (मुक्ति) तक पहुँचानेवाली शिक्षापद्धतिका विलोप सर्व अनर्थोंका मूल है। परमेश्वर,

६. परिवेदना

प्रकृति, आकाश-वायु-तेज-जल-पृथिवी - संज्ञक पञ्चभूतोंके नैसर्गिक स्वरूपसे, पुण्य और पुण्यात्मासे सुदूरता प्रगतिकी परिभाषा होनेके कारण इस पाखण्डयुगमें वस्तुसार, क्रियासार तथा शमदमादिभावसारसंज्ञक विभूतिविहीनता सर्वत्र परिलक्षित है।

पवन - प्रकाश - पानी - अन्न, भूमिके विकृत तथा अवकाशप्रद आकाशके सङ्कीर्ण किये जानेके कारण ; तद्वत् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध एवम् सङ्कल्प, निश्चय, गर्व और स्मरणरूप मनोभावके दूषित होनेके कारण इस यान्त्रिक युगमें स्वस्थ जीवनकी समुपलब्धि सुदुर्लभ है। सनातनसंस्कृतिके विरूप इस यान्त्रिक युगमें धृति (धैर्य - सन्तोष), क्षमा, दम (निर्विकार मनः स्थिति, मनः संयम, द्वन्द्वसहिष्णुता), अस्तेय (अन्यायपूर्वक धनार्जनमें प्रीति तथा प्रवृत्तिकी निवृत्ति), शौच (शुद्धि), इन्द्रियनिग्रह, धी (शास्त्रज्ञान), विद्या (आत्मज्ञान), सत्य और अक्रोध - संज्ञक दशलक्षणलक्षित धर्मका विलोप सुनिश्चित है। अत एव अशान्ति और दुःख अनिवार्य है।

बहिर्मुखता तथा परतन्त्रताकी पराकाष्ठा वैज्ञानिक युगका परिचय है। अन्तर्मुखता तथा स्वतन्त्रताकी क्रमिक प्रतिष्ठा वैदिक युगका परिचय है।

वैज्ञानिक युगमें वर्णसङ्करता तथा कर्मसङ्करताकी पराकाष्ठा विकासकी परिभाषा है। वैदिक युगमें वर्णसङ्करता तथा कर्मसङ्करताकी पराकाष्ठा विनाशकी परिभाषा है।

६. परिवेदना

श्रमकी बचत, समयकी बचत तथा भोग्यवस्तुओंका अधिकाधिक उत्पादन यान्त्रिक युगका सिद्धान्त है; तथापि श्रमकी अनुभूति, समयकी स्वल्पता तथा सुविधाकी न्यूनताका सर्वत्र प्रलाप और परिताप है।

सनातनसंस्कृतिके सर्वथा विरूप शासनतन्त्रके कारण सनातन वर्णाश्रमव्यवस्थाका प्रायः विलोप हो चुका है। अत एव सकल विसङ्गतियोंका केन्द्र बना हुआ भारत अपने अस्तित्व और आदर्शको सुरक्षित तथा सुव्यवस्थित रखनेमें अक्षम है।

चतुर्दशभुवनात्मक ब्रह्माण्डमें परिलक्षित चमत्कृतिका एकमात्र हेतु वेदादिशास्त्रसम्मत कर्म तथा उपासनाका समुच्चित अनुष्ठान है। वेदादिशास्त्रसम्मत कर्म तथा उपासनाका विलोप होनेके कारण मनुष्योंको गन्धर्व, देव, पितर आदि द्रव्यसूक्ष्मविपाकात्मक (यज्ञादिपुण्यसारसर्वस्व) ऊर्ध्व शरीरकी समुपलब्धि असम्भव है।

दार्शनिक, वैज्ञानिक और व्यावहारिक धरातलपर सनातनसंस्कृतिका शास्त्रसम्मतपरम्पराप्राप्त अन्न -जल -दुग्ध - फलसंसाधन तथा अन्नादिसेवनरूप भोजन तद्वत् वस्त्र, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य, उत्सव, त्योहार, रक्षा, सेवा, न्याय, विवाह, लोकरञ्जन तथा लोकसङ्ग्रहका प्रकार सर्वोत्कृष्ट है। यद्यपि यह तथ्य निर्विवाद है; तथापि वर्तमान मार्गनिर्माण, सेतु, पुल, ट्रेक्टर, बस, कार, रेल, वायुयान, जलयान, डीजल, पेट्रोल, विद्युत् - आदि यातायातके सार्वभौम संसाधनकी दृष्टिसे एवम् बन्दूक, बम आदि युद्ध -

संसाधन और मोवाइल आदि सम्पर्कसंसाधनकी दृष्टिसे वर्तमान युगको उन्नत माना जा सकता है। परन्तु गम्भीर विचार करनेपर विषाक्त वायुमण्डल, विश्वयुद्धकी विभीषिका, सङ्क्रामक रोग, रात्रिजागरण, दिनमें शयन, स्त्री - पुरुषमें विभाजक विन्दुओंका विलोप, वेरोजगारी आदि दृष्टियोंसे आपातरमणणीय परिलक्षित उक्त उत्कर्ष वरदान कम तथा अभिशाप अधिक सिद्ध है।

७.संरचना

जीवन सर्दी - गर्मी, भूख - प्यास, हानि - लाभ, मान - अपमान, सुख - दु:खादि - द्वन्द्वमय है। इनमें सर्दी - गर्मी, भूख - प्यास नामक दो द्वन्द्व ; तद्वत् ज्वर, व्रण आदि विवध प्रकारके रोग स्थूलदेहकी प्रधानतासे प्राप्त होते हैं। अत एव इनका समुचित उपचार स्थूल सामग्रियोंकी प्रधानतासे कर्त्तव्य है। सहिष्णुताकी सीमाका अतिक्रमणकर प्राप्त सर्दी - गर्मी ; भूख - प्यासादि वेदनाप्रद सिद्ध हैं। सत्सङ्ग - स्वाध्याय - उपासना - संयम तथा सेवा - सुलभ विवेककी प्रगल्भता काम - क्रोधादि मानस द्वन्द्वोंके दमनमें तथा शीत - उष्णादि शारीर द्वन्द्वोंके सहनमें हेतु है।

अन्न, जल, वस्त्र, आवास, शिक्षा, चिकित्सा, मार्ग, उत्सव - त्योहार, रक्षा, सेवा, न्याय, विवाह और आत्मोद्धारकी यथायोग्य व्यवस्था प्रत्येक मानव और स्थावर - जङ्गम प्राणिमात्रको सुलभ हो; तद्वत् पृथ्वी, पानी, प्रकाश, पवन, आकाश सर्वहितप्रद सिद्ध हों - यह दायित्व मानवमात्रका है।

७. संरचना

श्रीप्रियव्रत, ध्रुव, पृथु , रघु, राम , युधिष्ठिर. सुधन्वा, विक्रमादित्य, चन्द्रगुप्तादि महाभागके शासनतन्त्रके अवलोकनसे यह तथ्य सिद्ध है कि धर्मनियन्त्रित पक्षपातविहीन शोषणविनिर्मुक्त सर्वहितप्रद शासनतन्त्रकी स्थापनाके बिना सबका समुचित पोषण असम्भव है।

महाराजाधिराज पृथुने कृषिके अनुकूल भूमि सुलभ कराकर और स्थावर - जङ्गम प्राणिमात्रको; तद्वत् पर्वतादिको निसर्गसिद्ध परम्पराप्राप्त अन्न सुलभ कराकर आदर्श शासकके रूपमें स्वयंको ख्यापित क़िया।

भूमि अभीष्ट वस्तुओंको देनेमें समर्थ है। पृथुमहाभागने जातिप्रमुखको वत्स, जातिको दोग्धा तथा सञ्चय - संस्थानको पात्र सुनिश्चित कर पृथ्वीके दोहनसे विविध प्रकारके अन्न प्राप्त करनेका मार्ग प्रशस्त किया । तदनुसार उन्होंने समस्त धान्य मनुष्योंको ; वेद ऋषियोंको, अमृत एवम् मनोबलरूप वीर्य - इन्द्रियबलरूप ओज - शारीरक बलरूप सहस् देवोंको ; सुरासव दैत्य - दानव - असुरोंको ; गन्ध - सङ्गीतमाधुर्य - सौन्दर्य गन्धर्व तथा अप्सराओंको; कव्य पितरोंको ; अष्टसिद्धि सिद्धोंको ; सिद्धि एवम् विविधविद्या विद्याधरोंको ; अन्तर्धान तथा कायव्यूहादि किम्पुरुषादि और मायावियोंको; रुधिरासव यक्ष - राक्षस - भूत-प्रेतोंको ; विष सर्पादि विषधरोंको ; तृणादि पशुओंको ; कच्चा मांस व्याघ्रादिकोंको; कीट - पतङ्ग - फलादि पक्षियोंको; रस वृक्षोंको;

मणि - माणिक्यादि विविध धातु स्थावर - जङ्गम - प्राणिनिकेत पर्वतोंको सुलभ कराया।

पृथ्वी प्रकृतिका चरम परिणाम है। इसमें गन्ध नामक गुण स्वत: सन्निहित है। इसे जलसे रस, तेजसे रूप, वायुसे स्पर्श, आकाशसे शब्द नामक गुण सुलभ है। इसमें अन्न और आकाशमय अन्त:करणको, जल तथा वायुमय प्राणको, तेजोमयी वाक् को; तद्वत् अन्य करणग्रामको परिपुष्ट करनेकी शक्ति सन्निहित है। अत: धेनुरूपिणी भूदेवी शब्दब्रह्मात्मक वेदसे लेकर मणि - माणिक्यादिपर्यन्त सकलान्न सुलभ करानेकी क्षमतासे सम्पन्न है।

भूदेवीसे विनिर्मित शरीर षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, धैवत, निषाद, इष्ट, अनिष्ट, प्रणिधान संज्ञक **दशविध शब्दाभिव्यञ्जकसंस्थान** है। यह उष्ण, शीत, सुख, दु:ख, स्निग्ध, विशद, खर, मृदु, रूक्ष, लघु, गुरु, गुरुतर - **द्वादशविध स्पर्श**का अभिव्यञ्जकसंस्थान है। यह ह्रस्व, दीर्घ, स्थूल, चतुरस्र, अनुवृत्तवान् (चतुर्दिक् गोल), शुक्ल, कृष्ण, रक्त, पीत, नील, अरुण, कठिन, चिक्कण, श्लक्ष्ण (भास्वर), पिच्छल (स्नेहन), मृदु, दारुण - संज्ञक **षोडशविध रूप**का अभिव्यञ्जकसंस्थान है। यह मधुर, अम्ल, लवण, तिक्त, कटु, कषाय - नामक **षड्विध रसों**का अनुभवसंस्थानरूप आश्रय होनेसे **षडाश्रय** है। इष्ट, अनिष्ट, मधुर, कटु, निर्हारी (दूरगामी तेज), मिश्रित, स्निग्ध, रूक्ष, विशद - नामक **नवविध गन्ध**का अनुभवसंस्थान भोगायतनरूप यह शरीर

है। मनुष्यादि शरीर क्रमशः रस, शोणित, मांस, मेद, स्नायु, अस्थि, मज्जा, शुक्र -संज्ञक अष्ट धातुमय और त्वक्, मांस, शोणित, अस्थि, स्नायु, मज्जा - नामक षाट्कौशिक (छह कोशोंवाला) है। अत एव इसकी अन्नमयसंज्ञा है।

अहस्तानि सहस्तानामपदानि चतुष्पदाम् ।
फल्गूनि तत्र महतां जीवो जीवस्य जीवनम् ।।
(श्रीमद्भागवत १. १३. ४६)

" हाथवालोंके बिना हाथवाले, चार पाँववाले पशुओंके बिना पैरवाले तृणादि, बड़े जीवोंके छोटे जीव (प्राणी) आहार हैं। इस प्रकार एक जीव दूसरे जीवके जीवनका कारण है।।"

अमृत और अष्टसिद्धिके अतिरिक्त अन्य अन्न मर्त्यलोकमें आंशिकरूपमें आज भी सुलभ हैं। दुग्धसे दधि, दधिसे नवनीत, नवनीतसे घृत तथा घृतसे मण्ड सुलभ करनेकी विधा मनुष्योंको आज भी विदित है। स्थावर - जङ्गम - प्राणिमात्रको; तद्वत् पर्वतादिको निसर्गसिद्ध परम्पराप्राप्त अन्न सुलभ करानेकी सनातनविधा यज्ञ, वलिवैश्वदेव, श्राद्ध. तर्पणादि नित्य - नैमित्तक कृत्य हैं; जो कि आंशिकरूपमें भारतादिमें प्रचलित हैं।

अन्न, जल, वस्त्र, आवास, शिक्षा, चिकित्सा, मार्ग, उत्सव - त्योहार, रक्षा, सेवा, न्याय, विवाहादिकी यथायोग्य व्यवस्था सुलभ करनेके लिए कला, विद्या, विज्ञान, श्रम, सामञ्जस्य और धन अपेक्षित है। तदर्थ हितैषीं, हितज्ञ विशेषज्ञोंसे परामर्श, परस्परके

सहयोगसे प्राप्त सामग्री और परिश्रम (सामूहिक श्रमदान)से अस्सी प्रतिशत क्षेत्रीय समस्याओंका समाधान सम्भव है। तदर्थ प्रयत्न प्रारम्भ करनेपर सोलह प्रतिशत क्षेत्रीय समस्याओंका समाधान विधायक, जिलापालादिके सम्भावित सहयोगसे सम्भव है। शेष चार प्रतिशत स्थानीय समस्याओंका समाधान सांसदादिके सौजन्यसे सम्भव है।

सत्य, सत्सङ्ग, स्वाध्याय, सर्वहितकी भावना, स्नेह, सहानुभूति, संयम, दया, दान, शौचाचार, माता - पिता - देव - पितर - आचार्य - अतिथि - आर्त्त - आश्रितसत्कार, समयोचित आचार, प्राप्त सामग्रीका सदुपयोग, प्राप्त विवेकका समादर, आलस्य - अहङ्कार - अनुदारता - दुःशीलता तथा दुर्व्यसनसे विहीन जीवन, ईश्वरप्रणिधान, यज्ञमय तथा योगमय जीवन लक्ष्मीकी स्थिर प्रतिष्ठा है। भूमि, जल, अग्नि, वायु , सत्पुरुष , काल, स्वकर्म तथा दया, दान, संयम लक्ष्मीके धारक संस्थान हैं। इनके समादरसे श्रीसम्पन्नता सम्भव है।

"**श्रीदः, श्रीशः, श्रीनिवासः, श्रीधरः, श्रीनिकेतनः, श्रियःपतिः, श्रीपरमः" (अग्निपुराण २८४.६, ७)** - इन भगवन्नामोंके जपसे श्रीकी समुपलब्धि सुनिश्चित है।

निम्नलिखित श्लोकोंके पाठसे श्रीकी समुपलब्धि सुनिश्चित है

"नमो देव्यै नमः शान्त्यै नमो लक्ष्म्यै नमः श्रियै।
नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै वृष्ट्यै हृष्ट्यै नमो नमः।।

७. संरचना

विशोका दुःखनाशाय विशोका वरदास्तु मे।
विशोका चास्तु सम्पत्त्यै विशोका सर्वसिद्धये।।"
(मत्स्यपुराण ८१. १६,१७)

"हे देवि ! तुझे नमस्कार, हे शान्तिस्वरूपे तुझे नमस्कार, हे लक्ष्मिस्वरूपे ! तुझे नमस्कार, हे श्रीस्वरूपे ! तुझे नमस्कार, हे पुष्टिस्वरूपे! तुझे नमस्कार, हे तुष्टि स्वरूपे ! तुझे नमस्कार, हे वृष्टिस्वरूपे! तुझे नमस्कार, हे हृष्टिस्वरूपे ! तुझे नमस्कार।।"

व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवनमें शील, स्नेह, शुचिता, सुन्दरता, सुमति तथा सम्पत्तिका सन्निवेश सुखमय जीवनका शुभ सन्देश है। शम (मनोनिग्रह), समत्व, सन्तोष, दया तथा विवेकसहित व्यवहार स्वयंके लिए तथा सबके लिए सुखप्रद है।

भोजन, वस्त्र, आवास, यातायात, पर्व - उत्सव - त्योहार, शिक्षा, रक्षा, सेवा, न्याय और विवाहकी समुचित व्यवस्थाके लिए धनका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

निर्धनताके आस्तिक - नास्तिक उभयसम्मत सात हेतु इस प्रकार हैं। -

१.श्रमके प्रति अरुचि.

२.सामग्रीके अर्जन, उपयोग और उपभोगकी न्यूनता अर्थात् साधनहीनता.

३.मेधाशक्ति, रक्षाशक्ति, वाणिज्यशक्ति तथा श्रमशक्तिके अनर्गल दोहन और दुरुपयोगकी प्रथा.

४.महायन्त्रोंके प्रचुर प्रयोगके कारण कुटीर तथा लघु उद्योंगोंकी हीनता.

५. मादक द्रव्योंकी दासता तथा विलासिता.

६.अहङ्कार, आलस्य, अनुदारता, असहिष्णुता, असामञ्जस्य, अनुभवहीनता, अदूरदर्शिता, देश - काल और परिस्थितिके विपरीत चर्या, वैर - विरोधकी पराकाष्ठा.

७. शासनतन्त्रकी दिशाहीनता.

निर्धनताके आस्तिकसम्मत अतिरिक्त दो हेतु इस प्रकार हैं।

८.धर्म तथा ईश्वरसे विमुखता.

९.आश्रितों तथा दीनोंकी उपेक्षासुलभ प्रारब्धकी प्रतिकूलता अर्थात् दैवकी दुर्बलता.

निर्धनतानिवारणके अचूक उपाय इस प्रकार हैं। -

१.स्वस्थ जीवन तथा न्यायोचित जीविकोपार्जनके महत्त्वको हृदयङ्गम करते हुए श्रमके प्रति रुचि.

२. सम्प्राप्त व्यक्ति और भूमि आदि सामग्रीके सदुपयोगका प्रशिक्षण.

३.मेधाशक्ति, रक्षाशक्ति, वाणिज्यशक्ति तथा श्रमशक्तिके सदुपयोगकी दृष्टि.

४. कुटीर तथा लघु उद्योंगका उपयोग.

५.सात्त्विक आहार और संयमित जीवनका अभ्यास.

६.कर्त्तव्यपरायणता, उदारता, परोत्कर्षसहिष्णुता, परस्पर

७. संरचना

सद्भावपूर्ण सम्वाद, अलोलुपता और दूरदर्शिता , देश - काल तथा परिस्थितिके अनुरूप शुचिता तथा दक्षता, सबके प्रति आत्मीयता.

७. सैद्धान्तिक सङ्घबलमें आस्था.

८.सत्सङ्ग, सङ्कीर्त्तन तथा स्वाध्यायशीलतासे प्राप्त शक्ति - सम्पन्नताके कारण धर्म तथा ईश्वरमें आस्था.

९. शौचेन लभ्यते विप्रः क्षत्रियो विक्रमेण तु।
वैश्यः पुरुषकारेण शूद्रः शुश्रूषया धनम्।।
(महाभारत - अनुशासनपर्व ६.१६)

"ब्राह्मण शुद्धाचारसे, क्षत्रिय पराक्रमसे, वैश्य उद्योगसे तथा शूद्र तीनों वर्णोंकी सेवासे धन प्राप्त करता है।।"

नादातारं भजन्त्यर्था न क्लीबं नापि निष्क्रियम् ।
नाकर्मशीलं नाशूरं तथा नैवातपस्विनम् ।।
(महाभारत - अनुशासनपर्व ६.१७)

"जो दानशील नहीं है, उसे धन नहीं मिलता; न नपुंसकको ,न आलसीको, न सर्वथा कर्मशून्यको, न शौर्यहीनको और न अतपस्वीको ही धन मिलता है।।"

न च फलति विकर्मा जीवलोके न दैवम्
व्यपनयति विमार्गं नास्ति दैवे प्रभुत्वम्।
गुरुमिव कृतमग्र्यं कर्म संयाति दैवं
नयति पुरुषकारः सञ्चितस्तत्र तत्र।।
(महाभारत - अनुशासनपर्व ६.४७)

७. संरचना

"इस जीवजगत् में उद्योगहीन मनुष्य कभी फूलता - फलता नहीं दृष्टिगोचर होता। दैवमें इतनी शक्ति नहीं है कि वह उसे कुमार्गसे हटाकर सन्मार्गमें लगा दे। जैसे शिष्य गुरुको आगे करके चलता है, वैसे ही दैव पौरुषको ही आगे करके चलता है। सञ्चित किया हुआ पुरुषार्थ ही दैवको जहाँ चाहता है, वहाँ ले जाता है।।"

यथा तैलक्षयाद् दीपः प्रहासमुपगच्छति।
तथा कर्मक्षयाद् दैवं प्रहासमुपगच्छति।।
(महाभारत - अनुशासनपर्व ६.४४)

"जैसे तैल समाप्त हो जानेपर दीपक बुझ जाता है, वैसे ही पौरुषके क्षीण हो जाने पर दैव भी विलुप्त हो जाता है।।"

यथाग्निः पवनोद्धूतः सुसूक्ष्मोऽपि महान् भवेत्।
तथा कर्मसमायुक्तं दैवं साधु विवर्द्धते।।
(महाभारत - अनुशासनपर्व ६.४३)

"जैसे थोड़ी - सी भी आग वायुका सहारा पाकर बहुत प्रचण्ड हो जाती है, वैसे ही पुरुषार्थका सहारा पाकर दैवका बल विशेष बढ़ जाता है।।"

यथा बीजं विना क्षेत्रमुप्तं भवति निष्फलम् ।
तथा पुरुषकारेण विना दैवं न सिध्यति।।
(महाभारत - अनुशासनपर्व ६.७)

"जैसे बीज खेतमें बोए बिना फल नहीं दे सकता; वैसे ही दैव (भाग्य, अदृष्ट, प्रारब्ध) पुरुषार्थके बिना सिद्ध नहीं हो सकता।।"

७. संरचना

क्षेत्रं पुरुषकारस्तु दैवं बीजमुदाहृतम् ।
क्षेत्रबीजसमायोगात् ततः सस्यं समिद्धयते।।
(महाभारत - अनुशासनपर्व ६.८)

"पुरुषार्थ खेत है तथा दैवको बीज बताया गया है । खेत तथा बीजके संयोगसे ही अन्न समुत्पन्न होता है।।"

सुखमय जीवनके लिए सूर्योदयके पूर्व ब्राह्ममुहूर्तमें, स्नानोत्तर, मध्याह्नकालमें, सन्ध्याकी बेलामें तथा रात्रिमें शयनके पूर्व कम-से कम पन्द्रह - पन्द्रह मिनटोंतक आत्मकल्याणसहित सर्वहितकी भावनासे भगवद्भजन अवश्य करना चाहिए।

जीवित रहनेके लिए भोजन, जल, तेज, वायु, आकाशका उत्तरोत्तर अधिक महत्त्व है। जितने समय तक प्राणी पार्थिव अन्नके बिना जीवित रह सकता है, उतने समयतक जलके बिना जीवित नहीं रह सकता। पथ्यस्वरूप अभिमत अन्नके सेवनसे स्वोचित समयतक शरीरमें प्राण और प्रज्ञाशक्तिका सञ्चार सुनिश्चित है। परन्तु पार्थिव अन्नकी अपेक्षा अन्नकारण जलका अधिक महत्त्व आस्तिक - नास्तिक उभयसम्मत है। जलसुलभ होनेपर भूख और प्यास दोनोंकी निवृत्ति सम्भव है, परन्तु जलके अभावमें केवल अन्नके सेवनसे प्यासकी निवृत्ति असम्भव है।

प्रणश्यत्यम्बुपानेन बुभुक्षा च युधिष्ठिर।
तृषितस्य न चान्नेन पिपासाभिप्रणश्यति।।
(महाभारत - आश्वमेधिकपर्व ९२दा०)

७. संरचना

जितने समय तक प्राणी जलके बिना जीवित रह सकता है, उतने समयतक शरीरमें स्थित तेज (ऊष्मा)के बिना जीवित नहीं रह सकता। जितने समय तक वह तेज (ऊष्मा) के बिना जीवित रह सकता है, उतने समयतक प्राणवायुके बिना जीवित नहीं रह सकता। जितने समय तक वह प्राणपवनके बिना जीवित रह सकता है, उतने समयतक देहंस्थित अवकाशप्रद आकाशके बिना जीवित नहीं रह सकता। कारण यह है कि पृथ्वीका कारण जल है। जलका कारण तेज है। तेजका कारण वायु है। वायुका कारण आकाश है। पृथ्वीमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध पाँच; जलमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस चार; तेजमें शब्द, स्पर्श, रूप तीन; वायुमें शब्द तथा स्पर्श दो और आकाशमें केवल शब्द नामक गुण सन्निहित है। अत एव पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश - उत्तरोत्तर सन्निकट निर्विशेष होनेके कारण उत्तरोत्तर अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। परन्तु ये पञ्चभूत जड होनेके कारण चेतन जीवके लिए प्रयुक्त तथा विनियुक्त हैं। जीवकी चाहके वास्तविक विषय जीवनधन अद्वय सच्चिदानन्दस्वरूप निजरूप जगदीश्वर हैं।

जीव मृत्युके चपेटसे विनिर्मुक्त सत्संज्ञक मृत्युञ्जयपद अमृतत्व चाहता है। वह अज्ञताके चपेटसे विनिर्मुक्त चित्संज्ञक अखण्ड बोध चाहता है। वह दैहिक, दैविक तथा भौतिक त्रिविध तापोंके चपेटसे विनिर्मुक्त अखण्ड आनन्द चाहता है। वह द्वैताभिनिवेशविनिर्मुक्त अद्वयात्मस्थिति चाहता है।

७. संरचना

जीव यद्यपि अद्वय सच्चिदानन्दस्वरूप ही है; तथापि उसकी चाहका विषय सच्चिदानन्द उसी तरह है, जिस तरह जल अर्थात् उसके अधिदैव वरुणकी चाहका विषय जल।

जिस प्रकार जलकी प्यासको जल पिलाकर दूर करनेकी आवश्यकता नहीं; अपितु उसे मात्र निज जलरूपताकी स्मृति दिलानेकी आवश्यकता है; तद्वत् जीवको विषयसंसर्गसापेक्ष जीवन, बोध और आनन्द दिलानेकी आवश्यकता नहीं; अपितु उसे मात्र निज सच्चिदानन्दरूपताकी स्मृति दिलानेकी आवश्यकता है।

सच्चिदानन्दरूप ब्रह्मात्मतत्त्व ही निर्विशेष तथा सविशेषरूपसे भजनीय है। उसके बिना जीवन और जगत्‌की कल्पना ही असम्भव है। वह सर्वोपरि ही नहीं, अपितु एकमात्र परम प्रेमास्पद है।

जब स्वल्प - समयतक एक वारके अन्न और जलके सेवनके प्रभावसे कई घण्टेतक प्रज्ञा और प्राणशक्ति उज्जीवित रहती है, तब भगवदर्थ अखिल चेष्टाका सम्पादन करते हुए सर्वहित तथा आत्मकल्याणकी भावनासे सर्वकारण सर्वेश्वरका कुछ समयतक सम्पादित भजनके प्रभावसे अद्भुत सत्ता, चित्ता और प्रियताकी स्फूर्ति अर्थात् अलौकिक सुख तथा शान्ति क्यों नहीं सम्भव है? जिस प्रकार, दाहक तथा प्रकाशक प्रज्वलित अग्निके सेवनसे शीत तथा अन्धकारका निवारण सद्यः सम्भव है, उसी प्रकार अन्तरात्मस्वरूप प्रत्यगात्मरूप सच्चिदानन्दसंज्ञक परमात्माके आत्मीय और आत्मभावसे सेवनसे मृत्यु, अज्ञता और दुःखका निवारण सद्यः ही सम्भव है।

७. संरचना

साक्षिसम्वेद्य भूख - प्यास, सर्दी - गर्मी, अहन्ता और ममतादि द्वन्द्वोंके आश्रयभूत अहमर्थकी अविद्याके द्वारसे आत्मतादात्म्यापन्नताकी अवस्था **सुषुप्ति** है। मृत्यु, मूर्खता, दुःखके भयसे अतीत सुषुप्तिगत अज्ञात भजनके अद्भुत प्रभावका परिज्ञान अनुभवसिद्ध तथा युक्तियुक्त है। शीत - उष्ण, भूख - प्यास, राग - द्वेषादि द्वन्द्वोंसे अतीत सुषुप्तिंमें मृत्युकी अव्याप्ति तथा मूर्खता (अन्यमें अन्यबुद्धिरूप अध्यास) एवम् दैहिक, दैविक और भौतिक - त्रिविध तापोंकी अप्राप्ति तथा अव्याप्ति - अनुभवसिद्ध है। ऐसी स्थितिमें व्यवहारदशामें बुद्धि, प्रयत्न, भावना तथा धृतिसहित अधिकार तथा अभिरुचिकी सीमामें सगुण अथवा निर्गुणकी उपासना अवश्य कर्त्तव्य है। श्रीब्रह्मा, सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, विष्णु, शिव, शक्ति और गणपति तथा इनके विविध अवतार - सगुण सर्वेश्वर हैं। अविद्या, काम, कर्मरूप कालुष्यके विना ही अचिन्त्यलीलाशक्तिके योगसे निर्विशेषकी अभिव्यक्ति सविशेषता है। उपाधिरहित अननुभाव्य निर्गुण - निराकार सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्ममात्रकी आत्मरूपसे स्फूर्ति निर्विशेषता है।

तदर्थ जीवन - यापन करते हुए ब्राह्ममुहूर्तमें स्नानके पूर्व तथा स्नानके पश्चात्, मध्याह्नकालमें, सन्ध्याकालमें तथा रात्रिमें शयनके पूर्व अथवा सूर्यादयकालमें, सूर्योदयके अनन्तर, मध्याह्नकालमें, अपराह्नकालमें और सूर्यास्तकी वेलामें (**छान्दोग्योपनिषत् २.१४.१**) नित्य ही मनुष्यमात्रको निज इष्टकी पाँच वार कम -

से - कम पन्द्रह मिनटोंतक स्वहित तथा सर्वहितकी भावनासे आराधना अवश्य करनी चाहिए।

अजका अर्थ अन्न समझते हुए भी ब्रह्मर्षियोंके पूछनेपर देवताओंका पक्ष लेकर "यज्ञमें हवनीय द्रव्य अजसंज्ञक छाग (बकरा) है, न कि अन्न ; छागसे ही यज्ञ करना चाहिये - "**छागेनाजेन यष्टव्यम्**" (महाभारत - शान्तिपर्व ३३७.१३,१४, अनुशासनपर्व ११५.४९-५१) अथवा छाग या अन्न जब जो वस्तु सुलभ हो जाय, उसीसे यज्ञ कर लेना चाहिये -" **यथोपनीतैर्यष्टव्यमिति प्रोवाच पार्थिवः**" (**महा. आश्वमेधिकपर्व ९१.२२**) - इस प्रकारका अनर्गल प्रलापके कारण ऋषियोंके शापसे अधोगतिप्राप्त उपरिचर वसु पाताललोकमें निवास करते हुए भी नारायणनामके जपके प्रभावसे तथा पाँच समय पञ्च यज्ञोंके द्वारा देवेश्वर श्रीहरिकी आराधनासे द्रवित प्रभुप्रेरित गरुडजीकी अनुकम्पाके अमोघ प्रभावसे पुनः आकाशमें विचरण करने लगे तथा सशरीर ब्रह्मलोकमें चले गये। -

चक्रे वसुस्ततः पूजां विष्वक्सेनाय भारत।
जप्यं जगौ च सततं नारायणमुखोद्गतम्।।
तत्रापि पञ्चभिर्यज्ञैः पञ्चकालानरिन्दम।
अयजद्धरिं सुरपतिं भूमेर्विवरगोऽपि सन्।।
ततोऽस्य तुष्टो भगवान् भक्त्या नारायणो हरिः।
अनन्यभक्तस्य सततस्तत्परस्य जितात्मनः।।

७. संरचना

वरदो भगवान् विष्णुः समीपस्थं द्विजोत्तमम्।
गरुत्मन्तं महावेगमाबभाषेप्सितं तदा।।
भूमेर्विवरसङ्गुप्तं गरुडेह ममाज्ञया।
अधश्चरं नृपश्रेष्ठं खेचरं कुरु मा चिरम्।।
तत एनं समुत्क्षिप्य सहसा विनतासुतः।
उत्पपात नभस्तूर्णं तत्र चैनममुञ्चत।।
तस्मिन् मुहूर्ते संजज्ञे राजोपरिचरः पुनः।
सशरीरो गतश्चैव ब्रह्मलोकं नृपोत्तमः।।

(महाभारत - शान्तिपर्व ३३७.२९-३२,३५, ३७, ३८)

सद्गुरुदेव श्रीकरपात्रमहाभागने वाराणसीमें मुझे सन्देश और उपदेश देते हुए बताया था कि वेदविमुख यवनोंमें भी नित्य पाँच वार भजनकी प्रथा उक्त श्रौत - स्मार्त प्रस्थानका स्मारक है।

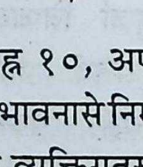

प्रातः ६, मध्याह्न १०, अपराह्न २, सायं ६ एवम् रात्रि १०बजे सर्वहितकी भावनासे निम्नलिखित प्रार्थना प्रत्येक सत्रमें पाँच - पाँच वार व्यक्तिगतरूपसे तथा आध्यात्मिक संस्थानोंके माध्यमसे नित्य कर्त्तव्य है। -

राष्ट्रोत्कर्ष - अभियान

७. संरचना

प्रार्थना

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदताम्
ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे
आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी।।
(श्रीमद्भागवत ५. १८.९)

"हे प्रभो ! विश्वका कल्याण हो, दुष्ट दुष्टतासे विनिर्मुक्त होकर प्रमुदित हो ! सब एक - दूसरेका हित चिन्तन करें। हमारा मन शुभमार्गमें प्रवृत्त हो तथा हमारी बुद्धि निष्कामभावसे आप स्वप्रकाश सदानन्दस्वरूप भगवान् श्रीहरिमें निमग्न हो।।"

'वस्तुशक्ति बोधकी अपेक्षा नहीं रखती'; अत: स्वरूपवैभवके बलपर कस्तूरीके मृगको निर्गन्ध तृणादिके आघ्राणसे भी नाभिमण्डलस्थ गन्धसुलभ आमोदकी समुपलब्धि होती है। परन्तु 'अज्ञानशक्ति निष्फल नहीं होती'; अत: अज्ञानवैभवके फलस्वरूप

कस्तूरीके मृगका भटकना बन्द नहीं होता। तद्वत् स्वरूपवैभवके बलपर जीव असत्ता, जडता तथा दुःखरूपताको प्राप्त नहीं होता; तथापि अनादि अविद्या, काम तथा कर्मके वशीभूत होनेके कारण इनका स्वयंपर आरोपकर संसृतिसागरमें निमग्न अवश्य होता है। आत्मस्वरूपमें अध्यस्त अनात्मप्रपञ्चसे विविक्त स्वयंकी अद्वितीय सच्चिदानन्दरूपताके अधिगमसे मृत्यु, मूढता तथा दुःखका आत्यन्तिक उच्छेद सुनिश्चित है। तदर्थ व्यक्ति एवम् समाजकी संरचना अपेक्षित है।

८.परियोजना

सत्यान्वेषी सज्जनोंसे यह तथ्य तिरोहित नहीं है कि इस यान्त्रिक युगमें भी सनातनसंस्कृति दार्शनिक, वैज्ञानिक और व्यावहारिक धरातलपर अमोघ सिद्ध है। वैदिक महर्षियोंके द्वारा चिर परीक्षित तथा प्रयुक्त उपायोंकी उपेक्षाकर लौकिक उत्कर्ष भी असम्भव है, पारलौकिक उत्कर्ष और मोक्षकी समुपलब्धि तो सर्वथा असम्भव ही है । विश्वकी दुर्दशाका एकमात्र हेतु सनातनसिद्धान्तका अनादर है।

सत्तालोलुपता तथा अदूरदर्शिताके कारण दिशाहीन शासनतन्त्र भारतकी दुर्दशाका विश्वविदित हेतु है। नेपाल यद्यपि पाँच वर्ष पूर्वतक हिन्दुराष्ट्र रहा है; परन्तु अपेक्षित स्वस्थक्रान्तिके अनुरूप सूझ – बूझका वहाँ भी अभाव है।

सनातनसंस्कृतिके अविरुद्ध और अनुरूप नीतिनियन्त्रित पक्षपातवहीन सर्वहितप्रद शासनतन्त्रकी स्थापनाके प्रारूपको क्रियान्वित किये बिना राष्ट्रोत्कर्ष असम्भव है।

तदर्थ सर्गक्रमके विलोम लयक्रमकी शैलीमें क्रमिक उत्कर्षका उपाय निर्धारितकर उसे क्रियान्वित करना अथवा युगचक्रपरिभ्रमणन्यायसे दिशा तय करना आवश्यक है।

यद्यपि कृतयुगकी अपेक्षा त्रेता, त्रेताकी अपेक्षा द्वापर और द्वापरकी अपेक्षा कलि ह्रासयुग है; तथापि कृतयुगके बाद त्रेता, त्रेताके बाद द्वापर, द्वापरके बाद कलि और कलिके पश्चात् द्वापर तथा त्रेताके बिना ही साक्षात् सत्ययुग प्राप्त होता है। यह **'युगचक्रपरिभ्रमणन्याय'** है।

'पुष्पके पश्चात् फल' यह आम, जामुन, अमरूद, धान, जौ, गेंहू, तरबूज, खरबूज, तोरई आदि सहस्रों स्थलोंमें दृष्टिगोचर तथ्य है। परन्तु वट, पीपल, पाकर, गूलर आदि कतिपय स्थलोंमें बिना पुष्पके फल भी दृष्टिगोचर हैं। ऐसी स्थितिमें फलबलकल्प्य सिद्धान्तके अनुसार वट, पीपल, पाकर, गूलर आदिको **अन्तःपुष्पित** माना गया है। तद्वत् बिना रजोदर्शनके गर्भ धारण करनेवाली देवियोंको अन्तःपुष्पिता माना गया है।

अत एव तमःप्रधान कलिके बाद रजःप्रधान द्वापर तथा सत्त्वप्रधान त्रेताके बिना ही शुद्धसत्त्वप्रधान सत्ययुगकी समुपलब्धिमें सौ पत्तोंके बण्डलको बल तथा वेगपूर्वक प्रयुक्त औजारसे एक साथ बींधनारूप **'शतपत्रबेधनन्याय'** से भगवान् कल्किकृत ताडनात्मक दोषापनयनरूप द्रावण-संज्ञक द्वापरकी तथा देहगतदिव्य-गन्धाप्लापनात्मक गुणाधानरूप शोधन - संज्ञक त्रेताकी अन्तर्निहित सम्प्राप्ति मान्य है।

उक्त रीतिसे परतन्त्रता और स्वतन्त्रताके पश्चात् सम्प्राप्त विकृतियोंका निवारण सर्गक्रमके विलोम लयक्रमकी शैलीमें कर

पाना दीर्घकालसापेक्ष तथा अत्यन्त दुर्गम है; अतः 'युगचक्र-परिभ्रमणन्याय', 'अन्तःपुष्पितन्याय', 'शतपत्रबेधनन्याय' से अमोघ व्यूहसंरचना अपेक्षित है।

तदर्थ साङ्केतिक प्रारूप इस प्रकार है। -

(१) **सुसंस्कृत, सुशिक्षित, सुरक्षित, सम्पन्न, सेवापरायण और स्वस्थ व्यक्ति तथा समाजसंरचनाकी स्वस्थशासकीयविधा , राजनीतिकी विश्वस्तरपर परिभाषा।**

(२)क्षेत्रीय देवस्थानको केन्द्र बनाकर सत्सङ्ग, सङ्कीर्त्तन , नीति तथा अध्यात्मकी शिक्षा एवम् सेवाप्रकल्पका निर्धारण।

(३)स्वयंको देवसंस्थानका पार्षद समझकर प्रत्येक परिवारसे प्रतिदिन औसत एक रुपया तथा एक घण्टाका सहयोग सुलभ कर उसका उस क्षेत्रको सुसंस्कृत, सुशिक्षित, सुरक्षित, सम्पन्न, सेवापरायण और स्वस्थ बनानेके उद्देश्यसे उपयोग और विनियोग।

(४) हितैषी, हितज्ञ, हितसाधक विशेषज्ञोंसे परामर्श साधकर क्षेत्रीय समस्याओं और विकासके प्रकृतिप्रदत्त तथा सम्भावित संसाधनोंका आकलन कर सद्भावपूर्ण सम्वादके बलपर परस्परके सहयोगसे प्राप्त सामग्री और समयका उक्त उद्देश्यकी पूर्तिकी भावनासे उपयोग और विनियोग। श्रमशक्ति तथा परस्परके सहयोगसे सुलभसामग्रीका सदुपयोग कर किसानों, मजदूरों आदि निर्धनोंकी आर्थिक विपन्नता दूर करनेका प्रयास। सर्वहितकी भावना तथा

उद्योगशीलताके द्वारा सङ्कीर्ण मनोवृत्ति और उद्योगविहीनताके कारण सम्प्राप्त निर्धनताके निवारणका प्रकल्प।

(५) तीन महीनेके अन्तरालसे सद्भावपूर्ण सम्वादके माध्यमसे सामाजिक संस्थानके द्वारा समायोजित संगोष्ठीमें सम्मिलित क्षेत्रीय विद्युत् , जल, पथ आदि विभागके पदाधिकारियों तथा सांसद और विधायकोंद्वारा पूर्व निर्धारित अभियानके क्रियान्वयनकी समीक्षा और सम्भावित क्रियान्वयनकी परिचर्चा।

(६) प्रत्येक परिवारमें प्रति दिन समायोजित एक घण्टेकी संगोष्ठीमें १० मिनट भजन - सङ्कीर्त्तन - पाठ , १० मिनट सद्भावपूर्ण कुशल - मङ्गलसम्बन्धी सम्वाद, २० मिनट परिवारके सर्वविध उत्कर्षसम्बन्धी सम्वाद, २० मिनट समष्टि हितकी भावनासे पारिवारिक दायित्वका निर्धारण तथा उसके क्रियान्वयनसम्बन्धी सम्वाद।

(७)सज्जनताके नामपर कायरता तथा शूरता और ओजस्विताके नामपर उग्रवादिताके निवारण और शूर, सुशील तथा ओजस्वी व्यक्तिकी संरचनाकी भावनासे प्रत्येक जिलामें **'आनन्दवाहिनी'** के एक, **'पीठपरिषद्'** के पाँच, **'आदित्यवाहिनी'** के चौरानवे सदस्योंका चयन और उन्हें सुशीलता, शूरता तथा ओजस्विताका प्रशिक्षण।

ध्यान रहे, कलियुगका स्वभाव भेड़िये जैसा है। यह डरपोकको दबोच लेता है और निर्भीकके सम्मुख नतमस्तक होता है। यह

अराजक तत्त्वोंमें फूट डालकर उन्हें मरवा देता है। यह कर्मकाण्डमें सन्निहित चित्तशुद्धिकी, उपासनाकाण्डमें सन्निहित चित्तस्थैर्यकी और ज्ञानकाण्डमें सन्निहित तत्त्वबोधकी क्षमताको भगवन्नाममें सन्निहित समझकर परमार्थसिद्धिका शीघ्र और सुगम मार्ग प्रस्तुत करता है। कलिके इस विचित्र स्वभावको परखकर क्रान्तिका प्रशस्त स्वरूप निर्धारित कर उसे क्रियान्वित करना चाहिये।

(८) वनवासियोंका वनसे तथा ग्रामवासियोंका गाँवसे पलायन रोकनेकी भावनासे सनातनसंस्कृतिके अनुरूप शील, स्नेह, शुचिता, सुन्दरता, सुमति, सम्पत्ति, शान्ति तथा सुखसम्पन्न वन एवम् ग्रामकी संरचना।

(९)महानगर तथा विकासके नामपर वन - पर्वत-खनिजद्रव्य, गोचर तथा कृषियोग्यभूमिके एवम् शुद्ध मिट्टी, पानी, प्रकाश, पवन, प्रचुर आकाश और पवित्र मनोभावके विलोपरूप अभिशापके निवारणके लिए महायन्त्रोंके प्रचुर प्रयोगसे विरहित सनातनसंस्कृतिके अनुरूप महानगर तथा विकासके स्वरूपका निर्धारण तथा क्रियान्वयन।

(१०)विकासके नामपर गोवंश, विप्र, वेद, सती, सत्यवादी, निर्लोभ , दानशील, गङ्गादि; तद्वत् वन, पर्वत, सागर, तीर्थ, आश्रम, पुरी, सनातनशिक्षापद्धति, कृषि, कुटीर तथा लघु उद्योग, खनिज पदार्थ, सेवाप्रकल्पका विलोप ; अराजक तत्त्वोंका राष्ट्रियस्तरपर वर्चस्व तथा देशकी सीमाका सङ्कोच; धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष-

संज्ञक पुरुषार्थ चतुष्टयसे विहीन व्यक्ति और समाजके निर्माणको निरस्तकर धर्मराज्य तथा रामराज्यका प्रकल्प। श्रम तथा मेधा, विद्या और कला, नीति तथा प्रीति, स्वार्थ और परमार्थ तद्वत् स्वच्छता तथा शुद्धिके परस्पर साहचर्यसे सुखमय जीवनका प्रकल्प।

(११) तदर्थ वर्तमान लोकतन्त्र या प्रजातन्त्रको राजतन्त्रके अभिमुख करनेकी भावनासे मेधाशक्ति, रक्षाशक्ति, वाणिज्यादिशक्ति तथा श्रमशक्तिका अनर्गल दोहन और दुरुपयोगको निरस्त करने एवम् शिक्षा, रक्षा, अर्थ, सेवा तथा संस्कृतिको सन्तुलित तथा सुव्यवस्थित करनेकी भावनासे मन्त्रिमण्डलका सांस्कृतिक अनुपातसे गठन। -

"चतुरो ब्राह्मणान् वैद्यान् प्रगल्भान् स्नातकाञ्शुचीन्।
क्षत्रियांश्च तथा चाष्टौ बलिनः शस्त्रपाणिनः।।
वैश्यान् वित्तेन सम्पन्नानेकविंशतिसङ्ख्यया।
त्रींश्च शूद्रान् विनीतांश्च शुचीन् कर्मणि पूर्वके।।
अष्टाभिश्च गुणैर्युक्तं सूतं पौराणिकं तथा।
पञ्चाशद्वर्षवयसं प्रगल्भमनसूयकम् ।।
श्रुतिस्मृतिसमायुक्तं विनीतं समदर्शिनम्।
कार्ये विवदमानानां शक्तमर्थेष्वलोलुपम्।।
वर्जितं चैव व्यसनैः सुघोरैः सप्तभिर्भृशम्।
अष्टानां मन्त्रिणां मध्ये मन्त्रं राजोपधारयेत् ।।"

(महाभारत - शान्तिपर्व ८५.७.११)

"राजाको चाहिए कि जो वेदविद्यामें विद्वान्, निर्भीक,

बाहर - भीतरसे शुद्ध एवम् स्नातक हों; ऐसे चार ब्राह्मण, शरीरसे बलवान् तथा शस्त्रधारी आठ क्षत्रिय, धन - धान्यसे सम्पन्न इक्कीस वैश्य, पवित्र आचार - विचारवाले तीन विनयशील शूद्र तथा अष्टगुणसम्पन्न पुराणविद्याविशारद एक सूतको मन्त्रिमण्डलमें सन्निहित करे। सेवापरायणता, हितोपदेश श्रवण तथा धारण - तत्परता , स्मृतिशीलता, कार्याकार्य - परिणाम - समीक्षकता , कार्यसाधक प्रकारान्तर - परिशीलनदक्षता अर्थात् वितर्कसम्पन्नता, शिल्पादि कलाकुशलता और तत्त्वज्ञानसम्पन्नता- ये आठ गुण हैं। सूतकी आयु लगभग पचास वर्षकी हो तथा वह निर्भीक, दोषदृष्टिरहित, श्रुति - स्मृतिज्ञानसम्पन्न, विनयशील, समदर्शी, वादी - प्रतिवादीके विवादको निपटानेमें समर्थ, निर्लोभ एवम् सप्त दुर्व्यसनोंसे विमुक्त हो। शिकार, जूआ, परस्त्री - प्रसङ्ग, मद्यपान - संज्ञक चतुर्विध कामज दोष तद्वत् मारना, गाली देना तथा दूसरेकी चीज दूषित करना - त्रिविध क्रोधज दुर्व्यसन हैं। उक्त रीतिसे कुल आठ (ब्राह्मण चार, क्षत्रियवर्गसे एक, वैश्यवर्गसे एक, शूद्रवर्गसे एक एवम् सूत एक) मन्त्रियोंसे राजा गुप्त मन्त्रणा करे।।''

(१२) परतन्त्रताकी अवधिसे अबतक सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, भौगोलिक, शैक्षिक, नैतिक तथा आर्थिकदृष्टिसे अपकर्षका आकलनकर उसकी पूर्तिका अमोघ प्रारूप निर्धारित कर उसे क्रियान्वित करनेका स्वस्थ प्रकल्प।

(१३) श्रीभगवत्पाद आदि शङ्कराचार्यमहाभागप्रदत्त वन तथा वनवासियोंके हितसाधक **वन** नामा, लघु वनरूप अरण्य तथा अरण्यनिवासियोंके हितसाधक **अरण्य** नामा; उच्च शिक्षणसंस्थानोंके हितसाधक **सरस्वती** नामा, मध्यम और लघुशिक्षणसंस्थानोंके हितसाधक **भारती** नामा, अयोध्या, काशी, मथुरा आदि पुरियोंके हितसाधक **पुरी** नामा; ब्रह्मचर्यादि आश्रमोंके हितसाधक **आश्रम** नामा , गङ्गादि तीर्थोंके हितसाधक **तीर्थ** नामा ; लघु पर्वतरूप गिरि तथा गिरिवासियोंके हितसाधक **गिरि** नामा, पर्वत तथा पार्वतोंके हितसाधक **पर्वत** नामा सागर एवम् सागरस्थ चराचरसहित सागरतटवर्तियोंके हितसाधक **सागर** नामा दशविध सन्यासियोंकी अथवा सन्यासीकल्प महानुभावोंकी उद्भावनाको क्रियान्वित करनेका प्रकल्प।

(१४) राजधानीके क्षेत्रफलसे राज्यका क्षेत्रफल अधिक होता है। पुरी, रामेश्वरम्, द्वारका और बदरीनाथसे सम्बद्ध चार आम्नायपीठ भारतवर्षकी धर्मराजधानीके अन्तर्गत भूभाग हैं। सन् १९११ से २०११ तक सौ वर्षकी अवधिमें बृहद् भारतका तीन वार अङ्ग्रेजोंके शासनकालमें और नौवार स्वतन्त्रभारतके सत्तालोलुप, अदूरदर्शी शासनकालमें विभाजन हुआ है। देशके विखण्डनका यह क्रम अबाधगतिसे चल रहा है। प्रति दिन भारतकी सीमा पड़ोसी देशोंकी ओर खिसकायी जाती है। देशका चप्पा - चप्पा विदेशी तन्त्रसे नियन्त्रित है। अतः दुर्बल व्यासपीठको

स्वस्थव्यूहरचनाके द्वारा प्रबल बनाकर सुशीलता, शूरता तथा ओजस्वितासम्पन्न शासकके माध्यमसे नैतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, आर्थिक आदि दृष्टियोंसे सम्भावित समर्थ देशकी अखण्डताके प्रशस्त प्रारूपको क्रियान्वित करना हमारा दायित्वपूर्ण अभियान है।

सन् १९११ से २०११तकके देशविभाजनकी तालिका

१.अङ्गरेजोंके शासनकालमें सन् १९११ में वर्तमान श्रीलङ्काको भारतसे पृथक् किया गया।

२. अङ्गरेजोंके शासनकालमें सन् १९३५ में भारतके भूभाग म्यामार (वर्मा) को पृथक् किया गया।

३.अङ्गरेजोंके शासनकालमें सन् १९४७ में वर्तमान पाकिस्तान तथा बङ्गलादेश्को भारतसे पृथक् किया गया।

४.सन् १९४७ में पाक अधिकृत कश्मीर (आजाद कश्मीर) को नेहरूजीके शासनकालमें भारतसे पृथक् किया गया।

५. सन् १९५० में नेहरूजीके शासनकालमें भारत - चीन मैत्रीकी ओटमें चीनने तिब्बतको हड़प लिया।

६. सन् १९५४ में नेहरूजीके शासनकालमें भारतसरकारने तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान (वर्तमान

बङ्गलादेश) को पश्चिम बङ्गालका बेरूबाड़ी क्षेत्र सौंपकर देशको विखण्डित किया।

७. सन् १९५८ में नेहरूजीके शासनकालमें चीनने देशके सीमावर्ती क्षेत्रपर अधिकार कर लिया।

८.सन् १९६२ में चीनने नेहरूजीके शासनकालमें भारतकी बासठ हजार वर्गमील भूमिपर अधिकार जमा लिया।

९. सन् १९६३ में नेहरूजीके शासनकालमें भारतसरकारने अण्डमान नामक द्वीपसमूहका सर्व नामक द्वीप म्यामार (वर्मा) को सौंप कर देशको विखण्डित किया।

१०. सन् १९७२ में इन्दिरागाँधीके शासनकालमें भारतसरकारने कच्चा तीबू द्वीप श्रीलङ्काको सौंप कर देशको विखण्डित किया।

११. सन् १९८२-८३ में चीनने भारतके अरुणाचलक्षेत्रके भूभागको हड़प लिया।

१२.सन् १९९२में नरसिंहरावके शासनकालमें भारतसरकारने तीनबीघा भूभाग बङ्गलादेशको देकर देशका विभाजन किया।

भारतकी अखण्डता स्वस्थक्रान्तिकी सफलता

卐

९. हिन्दुधर्मोपदेशः

(स्वर्गीय महामना पण्डित श्रीमदनमोहनमालवीयकृतो हिन्दूधर्मोपदेशः)

सङ्घे शक्तिः कलौ युगे

'कलियुगमें सङ्घमें शक्ति सन्निहित है'

हिताय सर्वलोकानां निग्रहाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय प्रणम्य परमेश्वरम्।।१।।
ग्रामे ग्रामे सभा कार्या ग्रामे ग्रामे कथा शुभा।
पाठशाला मल्लशाला प्रतिपर्वमहोत्सवः।।२।।

'परमेश्वरको प्रणाम करके सर्व प्राणियोंके हितके लिए दुष्टोंके दमनके लिए तथा धर्मकी स्थापनाके लिए गाँव - गाँवमें सभा करनी चाहिए एवम् गाँव - गाँवमें श्रीहरिकी शुभकथा होनी चाहिए और पाठशाला तथा मल्लशालाकी व्यवस्था करनी चाहिए। तद्वत् प्रत्येक पर्वपर महोत्सवका आयोजन करना चाहिए।।

अनाथा विधवा रक्ष्या मन्दिराणि तथा च गौः।
धर्म्यं सङ्घटनं कृत्वा देयं दानं च तद्धितम्।।३।।

धर्मार्थ सङ्घ बनाकर अनाथों, विधवाओं, देवमन्दिरों तथा गायोंकी रक्षा करनी चाहिए। तदर्थ दान देना चाहिए।।

स्त्रीणां समादरः कार्यः दुःखितेषु दया तथा।
अहिंसका न हन्तव्या आततायी वधार्हणः।।४।।

९. हिन्दुधर्मोपदेश

स्त्रियोंका विशेषरूपसे समादर करना चाहिए और दुःखियोंपर दया करनी चाहिए। जो अहिंसक हैं, उहें नहीं मारना चाहिए ; परन्तु जो धन - जन - शीलापहारक अत्याचारी आततायी हैं, वे अवश्य ही दण्डनीय हैं।।

अभयं सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं धृतिः क्षमा।
सेव्यं सदाऽमृतमिव स्त्रीभिश्च पुरुषैस्तथा।।५।।

स्त्रियों और पुरुषोंकेद्वारा अभय, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, धैर्य, क्षमा सदा अमृतके तुल्य सेवन करने योग्य हैं।।

कर्मणां फलमस्तीति विस्मर्तव्यं न जातुचित्।
भवेत्पुनः पुनर्जन्म मोक्षस्तदनुसारतः।।६।।

इस तथ्यको कभी न भूलना चाहिए कि कर्म चाहे शुभ हों या अशुभ उनका फल कर्त्ताको अवश्य मिलता है। अशुभ कर्मोंके फलस्वरूप नरकयातनाके अनन्तर निकृष्ट योनियोंमें और काम्यसंज्ञक शुभ कर्मोंके फलस्वरूप स्वर्गोपभोगके अनन्तर पुण्यक्षयके प्रभावसे मर्त्यलोकमें पुनः-पुनः शुभ शरीरोंमें जन्म अवश्य होता है। कदाचित् कर्मासक्ति, फलासक्ति, अहङ्कृतिको शिथिल कर, धृत्युत्साहसहित समत्वबुद्धिपूर्वक निष्कामभावसे स्ववर्णाश्रमोचित कर्मोंका अनुष्ठान सध सके तब उसके फलस्वरूप चित्त ब्रह्मात्मपरिशीलनके अनुरूप शुद्ध तथा समाहित होता है एवम् श्रोत्रिय - ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरुके सान्निध्यमें श्रवण, मनन तथा निदिध्यासनके अनन्तर निरावरण ब्रह्मात्मस्थितिरूप मोक्ष भी सुलभ होता है।।

९. हिन्दुधर्मोपदेश

स्मर्तव्यः सततं विष्णुः सर्वभूतेष्ववस्थितः।
एक एवाद्वितीयो यः शोकपापहरः शिवः।।७।।
पवित्राणां पवित्रं यो मङ्गलाञ्च मङ्गलम्।
दैवतं देवतानाञ्च लोकानां योऽव्ययः पिता।।८।।

जो शोक तथा पापापहारक सर्वव्यापक एक, अद्वितीय शिवस्वरूप विष्णु हैं; जो पवित्रोंके भी पवित्र तथा मङ्गलोंके भी मङ्गल, देवोंके भी देव और सर्व लोकोंके अव्यय पिता हैं, वे सतत स्मरण करने योग्य हैं।।

उत्तमः सर्वधर्माणां हिन्दूधर्मोऽयमुच्यते।
रक्ष्यः प्रचारणीयश्च सर्वभूतहिते रतैः।।९।।

यह सदा, सर्वत्र, सर्वहितप्रद हिन्दूधर्म दार्शनिक, वैज्ञानिक तथा व्यावहारिक धरातलपर सब धर्मोंसे उत्कृष्ट कहा जाता है। अतः यह सर्व प्राणियोंके हितमें संलग्न मनीषियोंके द्वारा रक्षा तथा प्रचार करने योग्य है।।

१०.जयघोष

धर्मस्य जयोऽस्तु अधर्मस्य नाशोऽस्तु
प्राणिषु सद्भावनाऽस्तु विश्वस्य कल्याणमस्तु
गोमातुः जयोऽस्तु गोहत्यायाः निरोधोऽस्तु
हर – हर – महादेव

धर्मकी जय हो! अधर्मका नाश हो!
प्राणियोंमें सद्भावना हो! विश्वका कल्याण हो!
गोमाताकी जय हो! गोहत्या बन्द हो!
भारत अखण्ड हो! हर – हर – महादेव !

धर्मस्य हि जयो भूयादधर्मस्य पराजयः।
भूयात्प्राणिषु सद्भावो विश्वस्यास्य शिवं सदा।।

धर्मकी जय हो, अधर्मका नाश हो, प्राणियोंमें सद्भावना हो, इस विश्वका सदा कल्याण हो।।

१०. जयघोष

गवां वै मन्त्रमूर्त्तीणां पुनर्भूयाज्जयो जयः।
कलङ्को गोवधोद्भूतः प्रभो राष्ट्रादपैतु नः।।

मन्त्रमूर्ति गोवंशकी पुनः जय हो, जय हो। हे प्रभो! हमारे राष्ट्रसे गोवधसे समुत्पन्न कलङ्क दूर हो।।

भूयाद्भारतमस्माकमखण्डं धर्ममण्डितम्।
स्वामिनां करपात्राणां वर्द्धतां धर्मसंहतिः।।

हमारा भारत अखण्ड और धर्मसमन्वित हो। करपात्रस्वामीके द्वारा संस्थापित धर्मसङ्घ उत्कर्षको प्राप्त हो।।

शम्भो हरहरेत्युच्चैर्महादेवेति गर्जनम्।
सद्धर्मवर्त्मपान्थानामस्माकं राजतां भुवि।।

उच्चस्वरसे शम्भो हर - हर महादेवका गर्जन हो। सनातनधर्ममार्गपर प्रयाण करनेवाले हमारे पथिक भूमण्डलपर सुशोभित हों।।

शुभं भूयाद्धि विश्वस्य प्राणिनः सन्तु निर्भयाः।
धर्मवन्तश्च मोदन्तां ब्रह्मज्योतिः समेधताम्।।

विश्वका कल्याण हो, प्राणी निर्भय हों तथा धर्मात्मा प्रमुदित हों, ब्रह्मजिज्ञासुओंके हृदयमें स्वप्रकाश ब्रह्मविज्ञान उद्दीप्त हो।।

११. श्रीहरिगुरुवन्दना

नारायण महाविष्णो श्रीधरानन्त केशव।
वासुदेव जगन्नाथ हृषीकेश नमो नमः।।

हे नारायण, महाविष्णो, श्रीधर, अनन्त, केशव, वासुदेव, जगन्नाथ, हृषीकेश, नमस्कार है, नमस्कार है।।

त्वय्यात्मनि जगन्नाथे मम मनो रमतामिह।
कदा ममेदृशं जन्म मानुषं सम्भविष्यति।।

हे आत्मस्वरूप जगन्नाथ ! मेरा मन आपमें यहाँ रमण करने योग्य हो सके, मेरा ऐसा मनुष्य जन्म कब सम्भव हो सकेगा ?।।

मन्नाथः श्रीजगन्नाथो मद्गुरुः श्रीजगद्गुरुः।
ममात्मा सर्वभूतात्मा तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

मेरे नाथ श्रीजगन्नाथ हैं, मेरे गुरु श्रीजगद्गुरु हैं, शोधित अहमर्थस्वरूप मैं सब प्राणियोंका आत्मरूप हूँ। उस सर्वात्मस्वरूप जगद्गुरु जगन्नाथसंज्ञक श्रीगुरुदेवके लिए नमस्कार है।।

चैतन्यं शाश्वतं शान्तं व्योमातीतं निरञ्जनम्।
नादबिन्दुकलातीतं तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

जो चैतन्य, सनातन, शान्त, आकाशसे अतीत, माया-कालुष्यविरहित, नाद - बिन्दु - कलासे पर हैं; उन श्रीगुरुदेवके लिए नमस्कार है।।

११. श्रीहरिगुरुवन्दना

परमानन्दसमुद्रोल्लासनिवासैकपूर्णिमा ज्योत्स्ने।
श्रीमत्करपात्रचरणसरसीरुहपादुके वन्दे।।

परमानन्दरूप समुद्रके उल्लासके उद्गमस्थान पूर्णचन्द्रज्योतिःस्वरूप श्रीमत्करपात्रस्वामीके चरणकमलकी दोनों पादुकाओंकी वन्दना करता हूँ।।

संसृतिसागरनिपतल्लोकसमुद्धारकारणीभूते।
श्रीमत्करपात्रचरणसरसीरुहपादुके वन्दे।।

जन्म - मृत्यु, सुख - दुःखादिकी अनादि और अजस्र परम्परारूपसंसृतिसागरमें निमग्न प्राणियोंके समुद्धारमें हेतुस्वरूप श्रीमत्करपात्रस्वामीके चरणकमलकी दोनों पादुकाओंकी वन्दना करता हूँ ।।

वन्दे विज्ञाननिस्यन्दां सच्चिदानन्दकन्दलीम्।
शङ्कराचार्यवर्याणां वाक्सुधां रसशेवधिम्।।

विज्ञानघन सच्चिदानन्दकन्द शङ्कराचार्यप्रवरकी रसनिधि - वाक्सुधाकी वन्दना करता हूँ।।

पूर्वाम्नायपुरीपीठचिदाकाशस्वयम्प्रभाः।
गुरवो निश्चलानन्दा विजयन्ते सतां हृदि।।

चिदाकाशस्वरूप पूर्वाम्नाय - पुरीपीठकी स्वयंप्रभा सत्पुरुषोंके हृदयमें विद्यमान गुरुवर निश्चलानन्द विजयश्रीको प्राप्त हैं।।

श्रीहरिः

श्रीगणेशाय नमः

१२. पूर्वाम्नाय श्रीगोवर्द्धनमठ - स्वस्तिप्रकाशनसंस्थानसे प्रकाशित पुस्तकें

१.शुकसुधा

२.श्वेताश्वतरोपनिषत् अध्याय १-३ (व्याख्यासहित)

३.श्वेताश्वतरोपनिषत् अध्याय ३-६ (व्याख्यासहित)

४.नासदीयसूक्तम् (सायणभाष्यानुवादसहित)

५.कुन्तीस्तुतिः (विस्तृत व्याख्यासहित)

६ श्रीराधारस और रसिकशेखर

७ श्रीराधारससुधा और श्रीकृष्णरसवैभव

८.पीठपरिषद् और उसके अन्तर्गत आदित्यवाहिनी और आनन्दवाहिनी

९.सुखमयजीवनका सनातनसिद्धान्त

१०.विश्वशान्तिका सनातनसिद्धान्त

११.स्वस्तिकगणित
१२.सार्वभौमसनातनसिद्धान्त
१३.सारार्थदीपिका
१४.शारीरकस्वाराज्यसिद्धिसारसमाख्या
१५.सनातनधर्मियोंका रसरहस्यमय बहुदेवादिवाद
१६.जीवनज्योति
१७.शिवावतार भगवत्पाद आदि शङ्कराचार्य
१८.गीताजयन्ती और भीष्मोत्क्रान्ति
१९.अनमोलवचन
२०.नीति और अध्यात्म
२१.नीतिसूक्तम्
२२.आयुर्विज्ञान
२३.अध्यात्मरहस्य
२४.श्रीमद्भगवद्गीतामें योगचतुष्टय
२५.सनातनसन्देश
२६.व्रतस्वरूपविमर्श
२७.बालजागरण
२८.श्रीमद्भगवद्गीतामें कर्मतत्त्व
२९.श्रीमद्भगवद्गीतामें पुरुषार्थ चतुष्टय
३०.नीतिचालीसा
३१.श्रीजगन्नाथ और उनकी रथयात्रा

३२.व्यूहरचना
३३.अङ्कपदीयम्
३४.गणितदर्शन
३५.पावनसन्देश
३६.दिग्दर्शन
३७.राष्ट्ररक्षा
३८.परमार्थसार
३९.ब्रह्मज्ञानावलीमाला
४०.करुणा, कठोरता और कर्त्तव्यनिष्ठा
41.The Eternal Principles Of Happy Life
४२.श्रीमद्भगवद्गीतामें ज्ञानतत्त्व
४३.क्रान्तिबिन्दु
४४.दिव्यानुभूति (प्रथम भाग)
४५.अवतारमीमांसा
४६.विचित्र सम्वाद
४७.वैदिकार्षगणित (प्रथम भाग)
४८.प्रवचनपीयूष
४९.बौद्धागमवृत्तान्त तथा निगमागमसिद्धान्त
५०.नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम्
५१.गणितचिन्तामणि
५२.चतुराम्नाय - चतुष्पीठ

53.The Philosophy of Mathematics
54.Swastik - Ganita
55.Nature of Numbers
56..Bhagawan Shree Krisna
५७.श्रीगीतासुधा
५८.श्रीराधासुधा
५९.जगदीश्वर, जीव और जगत्
६०.भागवतसुधा
६१.श्रीजगन्नाथाष्टकम्
६२.श्रीसागर - गङ्गा - आरती
६३.ऋग्वेदीय पूर्वाम्नाय - गोवर्द्धनमठ - पुरीपीठ
६४.भगवान् श्रीकृष्ण (हिन्दी अनुवाद)
६५.वैदिक बौद्धदर्शन (वैदिकार्षप्रक्रियाप्रकाश)
६६.शून्यैकसिद्धि और द्व्यङ्कपद्धति
६७.सनातनधर्म
68.Sanatan - Dharma
69. Ganita Chintamani
७०. पूर्वाम्नाय - पुरीपीठ - परिचय- प्रदीप
७१. उद्बोधन
७२. सनातनधर्म - प्रश्नोत्तर - मालिका
७३. भावनोपनिषत् (भाष्यानुवादसहित)
७४. श्रीदक्षिणामूर्त्यष्टकम् (भाष्यानुवादसहित)

७५. योगमीमांसा (सूत्रानुवाद तथा व्याख्यासहित)
७६. स्वस्तिक गणित (अङ्ग्रेजी अनुवाद)
७७.शून्यैकसिद्धि और द्व्यङ्कपद्धति (अङ्ग्रेजी अनुवाद)
७८.द्व्यङ्कपद्धतिकी वैदिकार्षविधा
७९.धर्मस्मृतिः
८०.बौद्धसिद्धान्त और वेदान्त
८१.भारत - वैभव
८२.वेदान्तरससार - सर्वसिद्धान्तसमन्वयप्रकार
८३.सनातनसिद्धान्त
८४.द्व्यङ्कादिपद्धतिकी वैदिकविधि
८५.श्रीशिवावतार भगवत्पाद आदि शङ्कराचार्य
८६.हस्तामलकस्तोत्रम्
८७.तोटकस्तुतिः
८८.मूकाम्बिकास्तुतिः
८९.श्रीहरिशङ्करस्तुतिः
९०.स्वरूपसिद्धिः
९१.गणितसूत्रम्
९२.राष्ट्रोत्कर्ष - अभियान
९३.राजधर्म
९४.सूत्रगणितम्
९५.वैदिकार्षप्रक्रियाप्रकाश
९६.मठाम्नाय - सेतु - महानुशासनम्

राष्ट्रोत्कर्ष - अभियान
स्वस्तिप्रकाशन

यथाशीघ्र प्रकाशन सम्भावित

२४.श्रीमद्भगवद्गीतामें योगचतुष्टय, ४९.बौद्धागमवृत्तान्त तथा निगमागमसिद्धान्त, ६१.श्रीजगन्नाथाष्टकम्, ७०. पूर्वाम्नाय - पुरीपीठ - परिचय- प्रदीप, ७३.भावनोपनिषत् (भाष्यानुवादसहित), ७४. श्रीदक्षिणामूर्त्यष्टकम् , ७५. योगमीमांसा ,७९.धर्मस्मृतिः, ९४.निगमागमगणितम् , ९५.वैदिकार्षप्रक्रियाप्रकाश,

राष्ट्रोत्कर्ष - अभियान

© All copyrights reserved